अपना अपना दर्द



शकुन्तला सरन

આદરણીય પુરુષોત્તમદાસ મોદીને

સાદર

સરસ્વતી સદન 'મૈત્ર'

૨૪.૬.૧૯૯૪.

अपना अपना दर्द

शकुन्तला सरन

चित्रा प्रकाशन
डी ६०/६१ पी-२-ए,
कृष्णापुरी, सिगरा,
वाराणसी ।

●

मूल्य : ७५/- रुपये

●

वितरक :
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पिशाच मोचन, वाराणसी ।

अक्षर संयोजन : कॉम्प्‌ सक्सेस, ४३ शिवाजी नगर, महमूरगंज, वाराणसी © २२०४१

लेखिका के बारे में

शकुन्तला मेरी पत्नी थी। पहली जुलाई १९२९ को पैदा हुई, १८ मई १९४४ को मुझसे ब्याही गयी और १७ मार्च १९९६ को हृदय रोग से उसका शरीरान्त हुआ।

बड़ी जीवटवाली स्त्री थी। विवाह के पहले क़सबों में निवास और तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं के कारण मिडिल, विशेष योग्यता और विद्या विनोदिनी की परीक्षाएं ही पास कर सकी। विवाह के बाद धीरे धीरे विशारद, साहित्यरत्न, मैट्रिक, इन्टरमीडिएट और बी०ए० पास करने के बाद १९६४ में एम०ए० की परीक्षा लगभग प्रथम श्रेणी में पास की। निरन्तर प्रयासों के बाद भी उस लम्बी विद्यार्थी कालावधी के कई कारण थे– पति की राजनीतिक उग्रता के कारण अस्थिर जीवन आर्थिक कठिनाइयां तथा दो बेटियों और दो बेटों के जन्म और पालन पोषण की व्यस्तता तथा ख़ुद भी पति के राजनीतिक जीवन के ख़तरों में भागीदारी। लेकिन धुन की पक्की थी, एक बार कोई काम हाथ में लेकर अधूरा छोड़ना नहीं जानती थी। धुन का पक्का व्यक्ति स्वभाव से कुछ उग्र होता ही है। यह भी थी, किन्तु इस उग्रता और व्यस्तता के बावजूद मेलजोल ख़ूब करती थी और जहां भी रही प्रत्येक वर्ग की स्त्रियों में सर्वप्रिय रही।

अपने दर्द के अलावा उसे दूसरों के दर्द की भी अच्छी पहचान थी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण हैं प्रस्तुत कहानियां। इन कहानियों में हर वर्ग की स्त्रियों, बच्चों और पुरुषों के दिल का दर्द उभरा है– केवल पारिवारिक संदर्भ में ही नहीं, जगजीवन के प्रत्येक विभाग में, ऐसे अंधेरे कोनों में भी जहां रूढ़िवादी लोग नज़र नहीं डाल सकते और डालना भी नहीं चाहते। विभिन्न कहानियों में शकुन्तला ने कई प्रकार की टेकनीक अपनायी है किन्तु स्पष्टता और मुखरता का दामन कहीं नहीं छोड़ा। मैं कहानियों के कथ्य और टेकनीक के बारे में इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। पाठकगण स्वयं निर्णय करें।

अब शकुन्तला सरन का नाम पत्रिकाओं में न दिखायी देगा, न रेडियो में उसकी आवाज़ सुनायी देगी। अपने पीछे वह छोड़ गयी है मेरे हृदय में अपनी याद औरं साहित्यानुरागियों के लिए कुछ मुद्रित पृष्ठ।

सरस्वती सरन 'कैफ़'

७-६-१९९६

प्रस्तुत कथा संग्रह पाठकों के हाथ में देते समय मुझे वैसे ही सुख का अनुभव हो रहा है जैसा सुख अपनी बात कह पाने का होता है । अपनी सोच, अपना अनुभव दूसरों के साथ बांटने की प्रवृत्ति आदिम प्रवृत्ति है इसी से प्रेरित हो कर यह कहानियां लिखी गई हैं । पिछले तीन दशकों में लिखी गई और आज तक लिखी गई सभी कहानियां इस संग्रह में शामिल हैं ।

हिन्दी कथा जगत में इन कहानियों की कोई जगह है या नहीं मुझे नहीं मालूम । अगर संग्रह की एक कहानी भी पाठकों को अपने अनुभव और विचारणा के निकट लगे तो मैं अपना श्रम सार्थक मानूंगी ।

मेरे पति श्री सरस्वती सरन 'कैफ़' का सहयोग, श्री राजीव श्रीवास्तव की पहल और कु. रेणुका रीझवानी का अथक परिश्रम न होता तो यह संग्रह कदापि न छपता । सभी कहानियां इधर उधर बिखरी पड़ी रहतीं । मैं सभी की हृदय से आभारी हूं । बाक़ी कहानियां खुद आपसे कहेंगी ।

शकुन्तला सरन

कथा सूची

दो ख़त

मैं स्तब्ध, सच ही गुड्डो ने किताब देखकर मां को चिट्ठी लिख ली। मैं गुड्डो का खत हाथ में पकड़े सोच रही थी, भगवान ! कितना छल कितना झूठ है तेरी दुनिया में । यह कैसी विडम्बना है, कि झूठा और बनावटी मेरा ख़त, हवाई जहाज में चढ़, सात समन्दर पार कर मंजू से जा मिलेगा । और उसकी बेटी का सच्चा ख़त, यहां मुट्ठी में बन्द पड़ा है । पसीने में भींग कर गल रहा है ।

"भावुकता छोड़ो मंजू । इस तरह ज़िन्दगी नहीं कटा करती ।" मैं अपनी बात पूरी भी न कर पायी थी कि मंजू तड़प उठी । "आप इसे भावुकता कहती हैं ? मेरी बेटी मेरी ज़िम्मेदारी है । मैं किसी और पर क्यों छोड़ूं ? मैं अपने बच्चे की ज़िम्मेदारी खुद निभाना चाहती हूं, और आप हैं कि आपको यह सब भावुकता लगती है ।"

"एक शब्द को लेकर लटक जाओ और करती रहो बेकार की बहस। इसमें तुम माहिर हो । मेरा मतलब समझो, मैं कहती हूं थोड़ा व्यावहारिक बनो, दुनियादार बनो, सपनों की दुनियां छोड़ो, ज़िन्दगी की सच्चाई का सामना करो। मैं जो कुछ कह रही हूं तुम्हारे भले के लिए ही कह रही हूं ।"

"आप पहले ही मेरे भले के लिए बहुत कुछ कर चुकी हैं क्या हुआ उससे ?" कहती हुई मंजू मुझसे पीछे छुड़ाने की ग़रज़ से दूसरे कमरे में चली गई ।

क्या समझती है यह लड़की ? मैं इतनी आसानी से हार मान लूंगी ? इसका पीछा छोड़ दूंगी ? मैं ढीठ बन कर उसके पीछे पीछे जाती हूं ।

"मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए मम्मी ।" मंजू चीख़ी । मैं नरम पड़ी, "तुम समझती क्यों नहीं बेटे । वह नेक और ईमानदार लड़का है, दिल का साफ़ है, दुनियादार है, आदर्शों की दुनिया में नहीं रहता ऊंच नीच समझता है, बहुत आगे की बात सोचता है, इसीलिए ऐसा प्रस्ताव रक्खा है । सिर्फ़ इतनी सी बात के लिए उसको छोड़ देना कहां की अक़्लमंदी होगी ?"

"वह चाहता है मैं उसके लिए अपनी बच्ची छोड़ दूं । और आपके लिए सिर्फ़ इतनी सी बात है ? आप भी खूब हैं मम्मी ।"

"फिर रास्ता ही क्या है ?" मैं हथियार डाल देती हूं । मंजू का सख़्त चेहरा कुछ नरम पड़ता है । "आप मेरे लिए क्यों इतनी परेशान हैं ? मुझे आपकी गृहस्थी का सुख नहीं चाहिए । मैं कमा खा सकती हूं, अपनी बच्ची को पाल पोस, पढ़ा लिखा, शादी ब्याह कर सकती हूं । आप क्यों मेरे पीछे पड़ी हैं । मैं गुड्डो को लेकर कहीं दूर जाकर, आपकी नज़रों से दूर रहूंगी, पर उससे शादी करने के लिए मैं अपनी बच्ची नहीं छोड़ सकती । आप क्या सोचती हैं ? गुड्डो को आपके पास छोड़ भर देने से पिछले पांच सालों की ज़िन्दगी मुझसे छूट जायेगी ? कोई निशान नहीं बचेगा पिछली ज़िन्दगी का ?"

"जितने निशान चाहो बना लो और देखती रहो दिन-रात । पर सच यह है कि इन निशानों का अब कोई महत्व नहीं है । ये निशान कुछ नहीं बिगाड़ सकते । एक नहीं हज़ार नश्तर नकारने पड़ते हैं तब कहीं दुनिया में गुज़ारा होता है । चौबीस साल की उम्र ही क्या होती है ? तुमने अभी देखा ही क्या है? जीना है तो अतीत को भूलना ही होगा ।"

"मैं आपसे कोई बात नहीं करना चाहती ।" मंजू एक झटके से सारे अनुभवों और उपदेशों को झटक देती है ।

"तू मुझे चैन से मरने भी न देगी लड़की । मैं अच्छी तरह जानती हूं कि तुम अकेले जिन्दगी नहीं काट सकती । आत्महत्या भले ही कर लो । कमाना खाना बड़ी बात नहीं, बड़ी बात है जीना । तुम मुझे हमेशा कड़ी बात कहने को मजबूर करती हो मंजू । अच्छा तो यह होता कि हमें अदालत के दरवाज़े न खटखटाने पड़ते । पर अब जब सब कुछ बिगड़ ही गया है, तो पीछे मुड़कर देखने का कोई मतलब नहीं । अब तुम्हारे सामने सिर्फ़ एक ही रास्ता है कि गुड्डो को मुझे दे दो और रमन से शादी करके अमेरिका चली जाओ । इस बुढ़ापे में चार साल की बच्ची की जिम्मेदारी क्या मैं बड़े शौक़ से ले रही हूं ? अगर कोई लड़का तेरे साथ गुड्डो को भी अपनाने को तैयार होता तो यह भार मैं अपने सिर क्यों लेती ? और तू मेरे साथ इस तरह बात कर रही है जैसे मैं तेरा गला काटने जा रही हूं । तुझे तो हमेशा सीधी बात उल्टी लगती है । तेरे दोनों भाई, भाभियां कौन चाहता है कि मैं गुड्डो को ले लूं ? बिल्कुल यही आदत..."

मुझे चुप होना पड़ा । देखा मंजू ज़ार ज़ार रो रही है । ऐसी रुलाई जिसमें हार का दुख था । भगवान जाने क्यों, मंजू को हार मानता देख कर, या बेटी को हताश जानकर, मेरे मन में मंजू के लिए प्यार उमड़ आया । मैंने

उसका सि़र अपनी गोद में रख लिया, और प्यार से सिर पर हाथ फेरती रही, मेरे मन में भी उबाल आने लगा था ।

कैसा भाग्य रचा था विधाता ने मेरी बेटी का अभी उन्नीस की भी न हुई थी कि एक से एक बढ़ कर रिश्ते आने लगे थे । रूप रंग में ही नहीं, बुद्धि गुण सभी में अनुपम थी । मेरी बहुएं जो मेरे घर में मेरे पति के पैसों पर राज कर रहीं हैं मंजू के पावों की धोवन भी नहीं हैं । पर उनका भी भाग्य है। भगवान जानता है कि अपने पिता की सच्ची उत्तराधिकारिणी तो मेरी बेटी ही है। पिता का बुद्धि वैभव सारा का सारा विरासत में बेटी को ही मिला है । वरना ये दोनों लड़के तो पिता के सामने कुछ भी नहीं । नालायक़ ही समझो जो बाप की पोज़ीशन के बल पर कमा खा रहे हैं । ऊपर से शान शौकत के सारे साधन, कोठी, कार के साथ पिता लम्बा बैंक बैलेंस भी तो छोड़ गए हैं बेटों के लिए।

मेरे बच्चों में जो सबसे अच्छी थी वही दुखी है । मंजू रोए जा रही थी। मैंने जी कड़ा करके समझाया, "तू फिक्र क्यों करती है ? मैं तेरी बच्ची को बहुत अच्छी तरह रक्खूंगी । मेरा और है ही कौन, गुड्डो मेरा सहारा बनेगी मैं उसका । आख़िर तुझे भी तो मैंने ही पाला पोसा है, शिक्षा दी हैं, संस्कार दिए हैं, मूल्य दिए हैं, वैसे ही उसे भी पालूंगी । तू मेरे ऊपर भरोसा कर मंजू । अब तो वह मुझसे हिल भी गई है । तू गुड्डो को भूल जा बेटा । भगवान तुझे और भी बेटे बेटियां देगा । तू पिछला सब कुछ भूल जायेगी । तू सोचना तूने गुड्डो को जनम ही नहीं दिया है, गुड्डो मम्मी की बेटी है ।"

इस निहायत दुनियादार मन में ऐसा ज्वार उठा कि आंखें धुंधला गईं, गला रुंध गया । तुम्हीं जानते हो भगवान मेरी मंजू कितनी भोली है । निरी बच्ची । अगर ऐसी भोली न होती तो अपना राज पाट यूं ही खो देती ?

मैं मंजू के आंसू पोंछ रही थी, कि उसकी बेटी गुड्डो आ गई । मंजू को रोते देख कर ठिठक कर खड़ी हो गई ।

मंजू भले ही भोली हो, पर उसकी बेटी गुड्डो चतुर सयानी है । तीखे नैन नक्श वाली गुड्डो के पास पैनी नज़रें हैं । पूरी बात बताने के लिए उसके पास शब्द नहीं हैं पर समझती सब कुछ है । उसे बिना किसी के बताए, समझाए मालूम है कि मम्मी पापा में लड़ाई हो गई है । पुष्पा आंटी पापा के साथ हमारे घर में रहती है । गुड्डो पूरी तरह मम्मी के साथ है, पापा से बेहद नाराज़, कभी भूल कर भी अपनी जुबान पर पापा का नाम नहीं लाती । रायपुर का फूलों वाला बड़ा सा बंगला, सहेलियां, रोली पौली, अपनी आया गौरा बाई, सबको पूरी तरह भूलने का नाटक, गुड्डो ने ऐसी सफलता से किया कि हैरानी होती है ।

मामा मामी और उनके बच्चों के साथ इस तरह घुल मिल कर रहने की कोशिश करती है, जैसे जन्म से ही वह नानी के घर में रह रही हो ।

आज मैंने गुड्डो की आंखों में समझ की एक और चमक देखी । उसे पूरी तरह अहसास हो गया था कि नानी और मम्मी के बीच भी कोई लड़ाई चल रही है । गुड्डो ने मुझे तीखी नज़रों से देखा । मानों उसकी आंखें कह रही हों, 'मैं जानती हूं तुम ज़रूर मेरी मम्मी के विरुद्ध कोई षडयंत्र रच रही हो और वह दिनों दिन निरुपाय होती जा रही है ।'

पांच बालिश्त लम्बी जान के लिए, रहस्यों का बोझ असह्य हो उठा । गुड्डो कुछ देर तर चुपचाप खड़ी मुझे घूरती रही, फिर मंजू की गोद में गिर कर ज़ोर ज़ोर से रोने लगी । मैं दूसरे कमरे में चली गई ।

गुड्डो मां से पूछ रही थी "नानी आपसे लड़ाई करती हैं?" मंजू ने उसे सम्हाला, "नहीं कहती हैं कि मैं तुझे छोड़कर पढ़ने के लिए दूर चली जाऊं।"

"मैं रह जाऊंगी मम्मी, तुम चली जाना ।" गुड्डो ने मां को दिलासा दी । मंजू ने गुड्डो को अपने से चिपका लिया और सिसक सिसक कर रोती रही ।

जैसा कि हमेशा होता आया है जीत मेरी ही हुई । मंजू रमन के साथ शादी करके अमेरिका जाने और गुड्डो को मेरे पास छोड़ने को राज़ी हो गई । मुझे संतोष था, पता नहीं क्यों ? मंजू के भावी सुखद जीवन की सम्भावना पर, या अपनी योजना की सफलता पर ।

शोर न शराबा, हल्ला न गुल्ला यहां तक कि रोना धोना भी न हुआ। मंजू पत्थर बन कर रमन की हो गई और गुड्डो मेरी । वे दोनों अपना नया घर बसाने सात समन्दर पार चले गए ।

मैं मंजू को छोड़ने हवाई अड्डे तक भी न गई थी । गज़ब की सर्दी थी उस दिन । मैं और गुड्डो दोनों एक ही रज़ाई में दुबके पड़े थे । गुड्डो सब कुछ समझते हुए भी अनजान बनी रहने की कोशिश कर रही थी । उसे बताया था कि मम्मी पढ़ने के लिए अमेरिका गई है । गुड्डो नानी के पास रह कर पढ़ेगी और जब बड़ी हो जायेगी तो मम्मी के पास चली जायेगी । उसे तो अब पढ़ना है और बड़े होना है । कैसा छल किया मैंने बच्ची के साथ ?

मंजू के दुबारा बस जाने की, खुशी और तुष्टि अधिक दिन मेरा साथ न दे सकी । एक नई और गुप चुप लड़ाई शुरु हो गई मेरे और गुड्डो के बीच।

मेरा बूढ़ा शरीर गुड्डो की देखमाल, साज संवार उस तत्परता से न

कर पाता जैसे मंजू करती थी । मैं अपनी कसौटी पर भले ही खरी नहीं उतर रही थी, पर गुड्डो मेरे साथ हर तरह से सहयोग कर रही थी ।

मंजू जब भी गुड्डो को नहलाती तो पानी पहले बहुत गरम होता, फिर बहुत ठंडा हो जाता और गुड्डो ठंडे पानी से नहाने से इनकार कर भाग खड़ी होती ।

अब पानी न गरम होता न ठंडा । गुड्डो चुपचाप नहा लेती । बेटी को खाना खिलाने, नाश्ता कराने में मंजू थक जाती । गुड्डो सारे घर में भागी भागी फिरती । एक चम्मच दलिया मुंह में और गुड्डो लान में । अगर प्लेट में चावल होता तो गुड्डो को रोटी चाहिए । रोटी चावल दोनों है तो पूड़ी अंडा खाना है पर यह सब तो गया अमेरिका, मंजू के साथ ।

अब तो गुड्डो, मामा मामी और बड़े भाइयों के साथ नाश्ते कि लिए मेज पर बैठती, तो पूरा का पूरा नाश्ता, पेट में भर कर ही उठती । किसी बात के लिए ज़िद नहीं । जैसा कहा तुरंत कर लिया । मेरा मन भर आता । मंजू तो ससुराल गई ही, पर उसकी बेटी तो इस तरह रह रही है जैसे बड़े क़ायदे-क़ानून वाले, सख्त लोगों के परिवार में ब्याह कर आई हो ।

मैं उसे गुड़िया की तरह सजाती, तरह तरह के लाड़ लड़ाती पर उसकी पनीली आंखों का गहरापन, दिनों दिन बढ़ता ही जाता । उन आंखों की गहराइयों में झांकते हुए मैं डरती । उन आंखों में झांक कर देखती तो गुड्डो कहती मिलती "तुम्हीं हो मेरी मम्मी को दूर भेजने वाली ।"

कभी मन व्याकुल हो उठता तो अपने को समझाती, "नहीं ! कहीं कुछ नहीं कहती गुड्डो । यह तो मेरा ही अपराध बोध है । वह तो बच्चा है । बच्चे तो उसी के हो जाते हैं जो उन्हें प्यार करे । सब भूल जायेगी । मैं मां जैसा प्यार दूंगी, तो मुझे ही मां समझेगी ।"

गुड्डो मेरी विचार धारा भंग करती है :

"नानी जी यह चिड़िया क्या कर रही है ?"

"अपने बच्चे को खाना खाना सिखा रही है ।"

"सारी मम्मी अपने बच्चे को खाना खाना सिखाती हैं ?"

"हां बेटे ।"

"चींटियां भी अपनी मम्मी से खाना सीखती हैं ?"

"हूं , और क्या ?"

"और मक्खियां भी ?"

"धत् पगली ।" कहने पर गुड्डो हंसती है । फिर कहीं गहरे में डुबकी लगा कर दूसरा प्रश्न लाती है :-

"नानी जी चिड़ियों के बच्चे सोते भी अपनी मम्मी के पास हैं ?"

"और क्या, चिड़िया अपने घोंसले में, बच्चों को अपने पैरों में छिपाकर सुला लेती है ।"

"सारे बच्चे सोते हैं अपनी मम्मी के पास ?"

मैं गुड्डो को गोद में उठा लेती हूं "तू भी तो मेरी बेटी है, मेरे पास सोती है ।"

गुड्डो मुझे असहज बनाने वाली, सहज हंसी हंस कर कहती है, "आप तो मेरी नानी जी हैं । मम्मी थोड़े ही हैं ।"

नीचे वाले बड़े कमरे में टेलीविज़न रक्खा है, घर के बच्चे और उनके कुछ दोस्त पिक्चर देखने के लिए बैठे हैं । पिक्चर चल रही है, 'घर घर की कहानी ।' बच्चे खुश हैं वह कहानी के साथ अपने को जुड़ा हुआ पाते हैं , पर फ़िल्म को पूरी तरह न समझते हुए भी, गुड्डो उदास हो जाती है । मैं बार बार उसका चेहरा देखती हूं । गुड्डो किस घर की कहानी देखे ? उसका तो कोई घर ही नहीं है । मैं गुड्डो को गोद में उठा लेती हूं । कुछ देर वह मेरी गोद में मुंह छिपाए पड़ी रहती है, फिर सो जाती है । मैं उसे लिटाने अपने कमरे में जाती हूं, उसे लिटा कर खुद भी लेट जाती हूं । फ़िल्म देखने का मन नहीं ।

मैं जानती हूं, बच्ची ख़ुश नहीं है । इन थोड़े ही दिनों में उसने उम्र के कई साल पार कर लिए हैं । मेरी सारी कोशिशें बेकार साबित हो रही हैं । गुड्डो मुझे अपने दुख-सुख की साझीदार नहीं बनाना चाहती । हर किसी पर से उसका विश्वास उठ गया है । उसका कोई अपना नहीं । नन्हीं गुड़िया निपट अकेली है ।

क्या मैं अपनी बेटी के सुख में अंधी होकर बच्ची के साथ अन्याय कर बैठी ? मन में कुछ कचोटता है । जैसे कोई पाप हो गया हो मुझसे । आंखें बरसने का बहाना ढूंढना चाहती हैं । मैं अपने को मज़बूत बनाती हूं । पाप पुण्य कुछ नहीं मैं गुड्डो को सब कुछ देकर ही मरूंगी। शिक्षा, दीक्षा, घर द्वार, पति बच्चे पाकर गुड्डो भरी पूरी हो जायेगी । सब कुछ भूल जायेगी और नानी को भी माफ कर देगी । मंजू अगर गुड्डो को ही लिए ही बैठी रहती तो वह ज़रूर अधूरी रहती । जो कुछ होना चाहिए वही होता है । मैंने ठीक ही किया ।

मैं सोती हुई बच्ची के बालों पर हाथ फेरती हूं, कोमलता से सहलाती

हूं, उसके मन में परोक्ष रूप से कोई भाव भरना चाहती हूं इसलिए जोर देकर खुले स्वर में बार बार दोहराती हूं, "मैं ही तेरी मम्मी हूं गुड्डो, नानी भी और मम्मी भी । तू मेरी बेटी है, प्यारी प्यारी ।"

बहू आवाज़ दे रही है । मेज़ पर खाना लग गया है । मुझे और गुड्डो दोनों को ही खाना खाने जाना चाहिए, पर मैं अकेले ही जाती हूं । मेरे बेटे, बेटों के बेटे और उनकी मम्मियां फिल्म के बारे में बातें करते खाना खा रहे हैं। मैं प्लेट अपनी तरफ खिसकाती हूं । बड़े बेटे की आंखों में शिकायत है, स्वर में आरोप है कि अगर मैं गुड्डो को भी, इसी तरह अपने से चिपकाए रही तो उसे भी वैसे ही बिगाड़ दूंगी जैसे मंजू को बिगाड़ा है । हांलाकि वह मुंह से सिर्फ इतना ही कहता है "आज फिर गुड्डो बिना खाना खाए सो गई ?"

गुड्डो का रखना इन सब को कितना खल रहा है यह मैं भी ख़ूब अच्छी तरह जानती हूं । गुड्डो तो पराई है ही, मैं भी इनके लिए पराई हो गई हूं । दोनों बहुएं हमेशा इसी विषय पर चर्चा करती रहती हैं कि गुड्डो आज तो प्राब्लम है ही पर आगे कितनी बड़ी मुसीबत बनेगी हम सबके लिए, यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा । वे हर समय मुझे ग़लत सिद्ध करने के लिए तत्पर रहती हैं । वैसे दोनों में कितने ही मतभेद हैं एक दूसरे को फूटी आंख नहीं सुहातीं, पर जहां तक गुड्डो, मंजू और मेरा प्रश्न है वे दोनों एक हैं । सब एक मत हैं कि मैं अपना सब कुछ पैसा जेवर गुड्डो पर ही लुटा दूंगी ।

गर्मियों की दोपहर है । सब अपने अपने कमरों में सो रहे हैं । एकान्त जान कर मंजू को ख़त लिखने बैठी हूं । कई दिन पहले ही लिफ़ाफ़ा लाकर रक्खा है पर मौक़ा ही नहीं मिलता । मंजू को ख़त लिखना न बेटे पसन्द करते हैं न बहुएं । वे कहते हैं कि मैं मंजू को ख़त लिख लिख कर उसकी गृहस्थी उजाड़ दूंगी ।

बड़ी बहू कहती है, "आपका प्यार ही मंजू को ले डूबा । अब तो उसे वहां एडजस्ट करने दें । पराए घर में पराए घर की तरह रहना होता है । आख़िर हम लोगों ने भी तो यहां आकर एडजस्ट किया ही है ।"

ये वाक्य मौके बेमौके उसकी ज़बान से उछलते रहते हैं और मैं अपना आंचल पसार कर उन्हें समेट लेती हूं । ज़बान खोलने की जुर्रत नहीं करती ।

बेटे बहुओं से तो छिपा भी लूं, पर यह ज़रा सी गुड़िया सब समझती है ।

"नानी जी आप मेरी मम्मी को चिट्ठी लिख रही हैं ?"

"हाँ " मैं रूखा सा उत्तर देती हूं ।

"मुझे भी ख़त लिखना सिखा दीजिए, मैं भी मम्मी को चिट्ठी लिखूंगी"

"तुम अभी छोटी हो । बड़ी होकर जब पढ़ना लिखना सीख जाओगी तब लिखना ।"

"मुझे पढ़ना आता है । लिखना भी आता है । मैं लिखूंगी, आप सिखा दीजिए न ।"

"अच्छे बच्चे कहना मानते हैं । मुझे काम करने दो, और शोर न मचाओ, मामी जाग जायेगी"। मैंने कड़ी नज़र फेंक कर गुड्डो को शान्त करने की कोशिश की ।

"मैं अपनी किताब में देखकर लिख लूंगी ।"

"कह दिया न । नहीं लिखना है ।" मैंने डांटा ।

"मैं आपका लिफ़ाफ़ा फाड़ दूंगी ।" गुस्से में गुड्डो ने लिफ़ाफ़ा उठा लिया और फाड़ने लगी । अब मेरे सब्र का बांध टूट गया । यह लड़की शोर मचाकर दूसरों को ज़रूर उठा देगी । कस कर उसके गाल पर एक चांटा मार दिया । गुड्डो ज़ोर ज़ोर से रोने लगी ।

"ख़बरदार जो मुंह से आवाज़ निकाली ।" मैंने गुड्डो को पलंग पर पटक दिया । "आंखें बन्द करो और सो जाओ ।"

बच्ची धीरे धीरे सुबकती रही । मैं उसकी तरफ़ पीठ करके वहीं पलंग पर बैठी मंजू को ख़त लिखती रही । गुड्डो के बारे में मैंने मंजू को लिखा "गुड्डो यहां पर बहुत ख़ुश है । तुम्हें ज़रा भी याद नहीं करती । घर में बच्चों के साथ घुल मिल कर खेलती रहती है ख़ूब शरारतें करती है । मुश्किल से थोड़ा पढ़ा पाती हूं । अगले ख़त में नया फ़ोटो खिंचवा कर भेजूंगी ।" आदि आदि ।

चिट्ठी बंद की । पता लिखा । पलट कर देखा तो गुड्डो सो गई थी। मैं खुद बाहर जाकर लेटर बॉक्स में ख़त डाल आई । थोड़ा आराम करने के ख्याल से गुड्डो के पास ही लेट गई । चिट्ठी लिख कर मन हल्का था । भले ही बहुत कुछ झूठ लिखा हो, पर मंजू को तो तसल्ली मिलेगी । पर अफ़सोस हो रहा था, गुड्डो के ऊपर यूं ही हाथ उठा दिया । उम्र की वजह से जल्द ही संतुलन खो बैठती हूं । सोती गुड्डो को प्यार करके अपने अपराध का प्रायश्चित कर निश्चिन्त होकर लेटी तो आंख लग गई ।

धूप ढले आंख खुली तो देखा चार बज रहे थे । गुड्डो उठ गई थी। इधर उधर देखा, दिखाई न दी । कहां चली गई धूप में, कहीं बामीर पड़ गई तो । कैसे सम्हाल पाऊंगी इस लड़की को । कितनी भारी ज़िम्मेदारी ले ली

इन बूढ़े कन्धों पर । खिन्न मन से उठी, मुंह धोया, पानी पिया, फिर ड्राइंग रूम में आई, देखा गुड्डो सोफे पर पड़ी सो रही है, न जाने कब वहां से उठकर चली आई । पंखा बन्द था । बच्ची पसीने से लथपथ, गहरी नींद में सो रही थी । पास ही मेज़ पर उसकी कापी, किताब और पेंसिल पड़ी हुई थी । मैंने किताब बन्द की, कापी के ऊपर रक्खी, पेंसिल उठा कर पास में रख दी और सोचा गुड्डो को उठाकर अपने कमरे में सुला दूं । सोती हुई गुड्डो अपने हाथ में कापी का एक पन्ना मोड़कर पकड़े हुए थी । मैंने उत्सुकतावश धीरे से पन्ना उसकी मुट्ठी से छुड़ा लिया । काग़ज पसीने से भींग गया था । खोल कर देखा उसमें लिखा था - "फल चख, खट पट मत कर । अब घर चल । घर आ, म म म ।" मैं स्तब्ध, सच ही गुड्डो ने किताब देखकर मां को चिट्ठी लिख ली। मैं गुड्डो का ख़त हाथ में पकड़े सोच रही थी, भगवान ! कितना छल कितना झूठ है तेरी दुनिया में । यह कैसी विडम्बना है, कि झूठा और बनावटी मेरा ख़त, हवाई जहाज में चढ़, सात समन्दर पार कर मंजू से जा मिलेगा । और उसकी बेटी का सच्चा ख़त, यहां मुट्ठी में बन्द पड़ा है । पसीने में भींग कर गल रहा है ।

●●●

चटाई का घर

मकान तो ईंटों को जोड़कर बनाया जाता है । लेकिन घर तो दिलों से ही बनता है । ऐसा क्या ख़ास था उस चटाई के घर में लालसा उठती थी - काश ! ऐसा घर मेरा भी होता ! .....

आलोक बाहर से बड़े अच्छे मूड में आये थे । मुझे रोता देखकर ठिठक गये । घबरा कर बोले, "क्यों क्या हुआ ?", "कुछ भी हुआ हो, तुम्हें क्या ? तुम तो बस अपने काम से काम रखते हो । किसी को क्या हुआ है यह जानने की फुरसत ही कहाँ है तुमको ?" मैं जली-भुनी बैठी थी, सो खूब जली-कटी सुना डाली । पर वाह रे आदमी !

"ठीक है, नहीं बताना चाहती तो न बताओ ।" कहते हुए बाहर बरामदे में चले गये और बैठकर अख़बार पढ़ने लगे ।

मेरे तन-बदन में आग लगी गयी । कोई प्यार नहीं, मनुहार नहीं, मेरे दुख को जानने की उत्सुकता नहीं । मेरे रोने के प्रति उदासीनता दिखाकर इन्होंने बारूद में चिनगारी डाल दी । मैं आपे से बाहर हो गयी । पीछे-पीछे बरामदे में आई । आलोक ने एक नज़र उठाकर देखा और फिर अख़बार में मुंह छिपा लिया । भगवान जाने पढ़ भी रहे थे या सिर्फ मुझसे भाग रहे थे । पर मैं छोड़ने वाली न थी ।

"आज जो कुछ हुआ, उसके लिए तुम्हीं ज़िम्मेदार हो । सब तुम्हारे कारण ही हुआ ।"

आलोक झुंझला कर बोले, "हुआ क्या ? यह भी तो मालूम हो । या हर बात के लिए मैं यूं ही जिम्मेदार हो जाता हूँ ।"

"होगा क्या ? वही रोज़ रोज़ की किचकिच । आज फिर मकान मालकिन ने आकर मुझे ख़ूब खरी-खोटी सुनाई । तुम होते तो देखते, उन्होंने मेरा कितना अपमान किया । पर तुम्हें तो मेरे मान अपमान से कुछ लेना देना है नहीं ।"

आलोक रुखाई से बोले, "हम ऐसा मौका ही क्यों देते हैं कि कोई

हमारा अपमान करे ।"

"अब गाय को तो मैं कैद करके रखने से रही । जानवर है, क्या मैं बुलाने गयी थी ? दो-चार फूल-पत्ते खा गयी, तो कौन सा आसमान फूट पड़ा, जो मुझे इतनी गालियां सुना गयी ?"

"तुम अपनी ग़लती तो देखती नहीं ।"

"हद है, आलोक । तुम्हें तो हमेशा मेरी ही ग़लती दिखाई देती है ।"

"अच्छा भई, छोड़ो ! ख़त्म करो इस बात को ।" खीजकर आलोक बोले ।

पर मैं कैसे छोड़ती, मुझे तो इसी मौके को बहाना बनाकर बहुत कुछ कहना है, न ! सो मैंने कहा ।

"आज अपना मकान होता तो क्या मजाल थी कि कोई दो बात सुना जाता ।"

आलोक को मानो किसी ने चुटकी काट ली, "अपना मकान यूं ही नहीं हो जाता । कुछ छोड़ना होता है । तकलीफ सहनी होती है, तब होता है अपना मकान ।"

"और तुम्हारे ही साथियों ने अपने-अपने फ़्लैट खड़े कर लिए हैं सो..."

अब आलोक और भी चिढ़े । उन्हें अपने साथियों से अपनी तुलना करना जरा भी पसंद नहीं । कुढ़कर बोले, "उनकी बीवियां तुम्हारी तरह ख़र्चीली नहीं । पैसा बचाकर रखना जानती हैं ।"

"मैं ख़र्चीली हूं ? क्या लुटा दिया मैंने तुम्हारा । कौन-सा अपने मैके वालों को दे आई । उनके पास तो भगवान के दिये चार-चार मकान खड़े हैं।"

"होंगे । मुझे क्यों सुना रही हो ।"

"इसलिए सुना रही हूं, कि चार नहीं, तुम एक फ़्लैट तो ले लो, सिर छुपाने के लिए ।"

आलोक चीख़े, "फ़्लैट-फ़्लैट ! कान पक गये सुनते-सुनते । मैं हज़ार बार कह चुका हूं कि लोन नहीं लूंगा । बिना लोन के फ़्लैट का सवाल ही नहीं है ।"

मुझे भी गुस्सा आ गया, "तुम्हारे अंदर हिम्मत ही नहीं है, लोन क्या लोगे ! क़िस्तों में लोन सभी पाट लेते हैं । किराया भी तो देते ही हैं । वही निकल जायेगा क़िस्त में । दुनिया ऐसे ही करती है ।"

"करने दो दुनिया को ! मैं किसी का पिछलग्गू नहीं हूं । न लोन लूंगा न फ़्लैट, मुझे अपना चैन नहीं खोना है ।"

आलोक के तेवर देखकर, उस वक्त तो मुझे चुप होना ही पड़ा ।

पर जनाब, आलोक ने लोन भी लिया और फ़्लैट भी । मेरे तो पांव ही धरती पर न पड़ते थे । किसी तरह गृह प्रवेश की सब रस्में पूरी हुईं, खाना पीना लोगों की विदाई के बाद, जब हम दोनों अकेले हुए, तो मुझे बड़ी उम्मीद थी कि नये फ्लैट में आलोक विशेष रूप में मेरा स्वागत करेंगे । कुछ प्यार-दुलार दिखाके हंस कर कहेंगे "आखिर तुमने फ़्लैट खरीद ही लिया । पक्की हो न अपनी ज़िद की !"

पर यहां तो कुछ नहीं । सिर्फ एक ख़ामोशी, जो कलेजा बींध दे । एक जान लेवा रुखाई । अपनी रुलाई रोककर किसी तरह सो तो गयी, पर एक कसक मन में बस गयी । शायद हम दोनों के बीच की ढीली सी गांठ आज कस गयी थी ।

फिर भी मैं घर को सजाने संवारने में लगी रहती । मैं जितना उत्साह दिखाती, आलोक उतने ही उदासीन रहते । उन्हें लगता, घर सजाने की क्या ज़रूरत है । उधर मैं घर को अपने और केवल अपने तरीके से सुरुचिपूर्ण तरीक़े से सजाना चाहती । आलोक सस्ते पर्दे, सस्ता फर्नीचर खरीदने की बात करते। बात बात में हम दोनों में झगड़े होते, जो महीनों चलते ।

एक दिन बाज़ार में घर सजाने की छोटी छोटी चीज़ें देख रही थी । एक पोस्टर बिक रहा था । बस मन को भा गया । पोस्टर पर लिखा था "मकान तो ईंटों को जोड़कर बनाया जाता है । लेकिन घर तो दिलों के जुड़ने से ही बनता है ।"

पोस्टर बड़े चाव से बाहर के कमरे में लगा दिया । सोचा, शायद हम दोनों, इन लिखे हुए अक्षरों से कुछ सीख लें । पर यहां तो सब उल्टा ही होता है । पोस्टर को देखकर आलोक बुत बने बैठे रहे । मैं चाय-नाश्ता लेकर कमरे में लौटी, तो देखती क्या हूं कि पोस्टर चिन्दी-चिन्दी होकर कूड़े की टोकरी में पड़ा है ।

घर क्या लिया, जी का जंजाल हो गया । किराये के घर में जो सुख-शांति थी, वह भी खो दी । मुझे अपनी कोई ग़लती नजर न आती अगर मैंने ज़िद करके दोनों के सिर छिपाने के लिए जगह बना ली तो कौन-सा अपराध कर दिया ।

इधर आलोक हैं, कि उन्हें लगता, मैंने लोन में फंसाकर आलोक के साथ अन्याय किया है । उनका चैन छीना है । उन्हें क़र्ज़ में डुबो दिया है । कभी किसी से क़र्ज़ न लेने की उनकी आन को तोड़ा है । वे ठगे गये हैं, आदि आदि बातें वे मेरे छेड़ने पर करते और बात बात में उबल पड़ते ।

बातें सुनकर मैं चुप तो रहती, पर मेरे मन के भाव मेरे चेहरे पर लिख जाते, 'तुम पलायनवादी हो, जीवन के संघर्षों से डरते हो ।' आलोक मेरे चेहरे पर लिखे भाव जरूर पढ़ लेते होंगे । हम दोनों ही खिंच जाते । गांठ और पुख़्ता हो जाती । ज़िंदगी और भी उदास । और भी वीरान । इससे तो मैं किराये के मकान में ही अच्छी थी । क्यों ज़िद कर बैठी, अकेली जान हूं, न बाल न बच्चा, कट ही जाती ज़िंदगी । मैं क्या फ़्लैट मरने पर साथ ले जाऊंगी। पर अब पीछे भी तो नहीं लौटा जा सकता ।

आलोक के दिल में इसलिए भी मेरे लिए जगह नहीं है कि मेरे कोई संतान नहीं है । संतान न होने का दुःख मुझे भी कम नहीं है । कौन-सी ऐसी औरत होगी, जो मां न बनना चाहती हो । घण्टों रोती रहती । फिर मन को समझाती, अभी कौन सी उम्र निकल गयी है । शादी को ११ वर्ष ही तो हुए हैं। मैंने तो १४-१४ वर्ष बाद भी बच्चे होते सुने हैं । मेरा आशावादी स्वभाव आशा का पल्ला न छोड़ता । जगह-जगह डाक्टरों को दिखाती फिरती । पैसा खर्च करती । आलोक कहते, "जो चीज़ नहीं मिलनी है, उसके पीछे भागना, पैसा ख़र्च करना, मैं नहीं सह सकता । तुम तो मुझे तबाह करने पर तुली हो। फ़्लैट तो मिल गया, अब बच्चे के लिए बेवक़ूफ़ों की तरह भागना छोड़ो ।"

ऐसे ही बेरहम उदास दिनों में, इटारसी से छोटे भाई विजय का ख़त आया । भाभी ने बेटे को जन्म दिया था । विजय चाहता था कि मैं उसके बेटे का नामकरण करूं, उसकी बेटी का नाम भी मैंने ही रखा था । विजय ने लिखा था कि मेरे घर की यह परम्परा बन गयी है कि बच्चों का नामकरण तुम करो। आने की तारीख़ लिखो, मैं लेने के लिए आ जाऊंगा ।

अंधा क्या चाहे, दो आंख । खत को संभालकर रखा और अलमारी से साड़ियां निकालकर अटैची में रखने लगी ।

"क्या कर रही हो ?" आलोक ने ज़बान खोली ।

"इटारसी जाने की तैयारी कर रही हूं । विजय ने बुलाया है ।"

"लेकिन वह तो लेने आयेगा ?"

"जब आयेगा, तब जाऊंगी, तो आशा को क्या फ़ायदा होगा । उसे

तो अभी इसी वक्त किसी मददगार की ज़रूरत है ।"

"मुझे इस वक्त छुट्टी नहीं मिल सकती, कि तुम्हें पहुंचाने जाऊं ।" आलोक ने बात साफ की ।

"मैं अकेली चली जाऊंगी, बस तुम गाड़ी में बिठा देना ।"

"और वहां ?"

"वहां पहुंचकर विजय को फोन कर दूंगी, वह आ जायेगा ।"

"मालूम है । एस्टेट स्टेशन से कितनी दूर है ?"

"मालूम है, मैं इंतज़ार कर लूंगी ।"

"जो जी में आये करो ।"

आलोक ने मुझे गाड़ी में बैठा दिया । एक दूसरे से बुरी तरह ऊबे हुए लोग, अपनी-अपनी दिशा में चल पड़े ।

गाड़ी सुबह पांच बजे इटारसी स्टेशन पहुंची । मन ख़ूब हल्का था । तुरंत विजय को फ़ोन किया । फ़ोन पाकर वह फूला न समाया, "बस थोड़ा इंतज़ार करो । मैं जीप लेकर पहुंचता हूं ।"

इटारसी स्टेशन में पीछे की तरफ से रेल की पटरी पार करो, तो पटरियों के किनारे-किनारे पर लगी ऊंची-ऊंची रेलिंग एक जगह पर अच्छा ख़ासा रास्ता देती है और हम शहर में दाख़िल हो जाते हैं । सारी कारें जीप वग़ैरह यहीं आकर खड़ी होती हैं और सगे संबंधियों को लेकर चली जाती हैं । मुझे भी यहीं विजय का इंतज़ार करना था ।

स्टेशन के बाहर मौसम सुहावना था । आसमान में हल्के-हल्के बादल छाए थे । रेलिंग के सहारे-सहारे कुछ ऊंचे-ऊंचे चबूतरे बने हैं । जी बहलाने के लिए इधर-उधर देखने लगी । जिस चबूतरे के पास खड़ी थी, वह एक बड़े कमरे के बराबर होगा । उसमें दो परिवार रहते जान पड़ते थे । जमीन पर चटाइयां बिछी थीं । एक कोने में चटाई पर तीन बच्चे सोए हुए थे । एक आदमी जो शायद उन बच्चों का पिता होगा, बैठा-बैठा बीड़ी फूंक रहा था । एक औरत सिर धोकर नहा रही थी । थोड़ी देर में वह आदमी उठा और दूर के नल से पानी की बाल्टी भरकर नहाने वाली के पास रख दी ।

चबूतरे के दूसरे कोने पर दूसरा परिवार बसा था - पूरी गृहस्थी, एक अंगीठी, लोहे की बाल्टी, प्लास्टिक का जग । लोहे की टूटी-फूटी कुर्सी जिस पर कुछ कपड़े पड़े थे, तार का हैंडिल लगा टीन का डब्बा । कुछ पोटलियां

बंधी पड़ी थीं । बड़ी-बड़ी टोकरियां जो कपड़े से बंधीं थी । कुछ होगा उनमें खाने पीने का सामान, या कुछ और ।

ताड़ की चटाई पर दो बच्चे सो रहे थे, लड़का तीन या चार वर्ष, लड़की एक साल की होगी । बच्ची गहरी नींद में सो रही थी । लड़का जग कर रीं-रीं कर रहा था । उसके हट्टे-कट्टे नौजवान पिता ने लड़के का मुंह धुलाया और खाने को बूंदी का लड्डू और कुछ शकरपारे दिये । पर वह रोए चला जा रहा था ।

लड़के की मां जो शायद नहा-धो चुकी होगी, खड़ी-खड़ी साड़ी बांध रही थी । गहरे बैंगनी रंग की साड़ी । न शर्म, न संकोच, देखने वालों से बिलकुल बेख़बर, जतन से साड़ी बांध रही थी । मुझे हंसी आ गयी । जैसा ख़ुद पहनने वाली का रंग, वैसा ही साड़ी का । स्वस्थ, खून से भरा, काला चेहरा, काले और खून के लाल रंग की झलक से बैंगनी की आभा दे रहा था।

बैगनी रंग से मुझे बेशर्म की झाड़ियों की याद आ गयी । ये झाड़ियां, सड़कों के किनारे-किनारे कीचड़ में उग आती हैं और खूब घनी होकर बाड़-सी बनाती हैं । इनमें लगते हैं बैंगनी रंग के फूल । न देखभाल की जरूरत, न खाद की । कीचड़ में बिना किसी की देख भाल के बेहिसाब फूलती हैं । शायद इन्हें इसीलिए बेशर्म की झाड़ी कहते हैं ।

यह बैंगनी रंग की साड़ी पहनने वाली बेशर्म औरत भी तो बेशर्म की झाड़ी जैसी है । मैं उसे बेशर्म की झाड़ी ही कहूंगी ।

आदमी बोला, "जल्दी कर, क्या कर रही है ।" औरत ने सिर्फ नजर उठाकर देखा और साड़ी बांधती रही ।

आदमी ने सोती हुई बच्ची को उठाया, मुंह धुलाया । तब तक हल्की-हल्की फुहार पड़ने लगी थी । बच्ची को गोद में उठाए-उठाए ही आदमी ने सारी चीजें समेटीं और टूटी कुर्सी पर रख भी दीं । कुछ चीजें कुर्सी के आस-पास रख दीं । थोड़ी दूर पर बाल्टी रख दी । फुहार पड़ने लगी । आदमी ने कुर्सी और बाल्टी, दोनों को दीवार बनाकर चटाइयों की छत बना दी। फिर एक के ऊपर एक सारी चटाइयां डाल दीं । नीचे की चीज़ें कुछ तो भीगने से ज़रूर बचेंगी । बच्चे को गोद में लिए-लिए ही वह दो-चार ईंटे उठाकर लाया और चटाइयों के ऊपर रख दीं । लीजिए बन गया अच्छा-ख़ासा चटाई का घर ।

लड़का पहले की तरह रो रहा था और लड्डू भी वैसे ही पकड़े था ।

अब, बेशर्म की झाड़ी, बालों में कंघी फेर रही थी । "श्रृंगार-पटार हुआ या नहीं ?" आदमी बोला ।

"चुप रे ।" बेशर्म की झाड़ी चीख़ी । और झट से चबूतरे के नीचे उतर गयी । बच्ची को लिए लिए आदमी भी उतर गया । लड़का ज़ोर ज़ोर से रोने लगा । नौजवान ने बीड़ी फूंकते आदमी से कहा, "दद्दा देखना इस को।"

दोनों जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाते जा रहे थे । एक मोड़ पर आकर आदमी ने बच्ची को बेशर्म की झाड़ी को दे दिया और धीरे-से उसके कान में कुछ कहा ।

बेशर्म की झाड़ी खिल उठी । बनावटी गुस्सा दिखाकर बोली, "तेरी यह हिम्मत ।" आदमी हंस रहा था । आंखों में आंखें डालकर कुछ कह रहा था । मुझसे कुछ दूरी पर खड़े वो दोनों इतरा रहे थे, इठला रहे थे । दोनों की आंखों से नेह बरस रहा था । दोनों का तन भीग रहा था । उनका मन भीग रहा था और साथ ही भीग रहा था उनका चटाई का घर ।

मेरे मन में बड़ी तीव्र लालसा उठी । काश ! मेरा घर भी भीग जाता। मैंने बेशर्म की झाड़ी की तरफ ईर्ष्या भरी नज़र डाली । मुझे लगा कि वह अपने में ही डूबी मुझे चिढ़ा रही है । उसका रोयां-रोयां पुकार कर मुझसे कह रहा था -

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्प वृक्ष की छांह ।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बांह ।

●●●

अपना दीन अपनी दुनिया

इस दुनिया को देखते हुए ही, मेरी अंतरंग सहेली कहती है कि घाट घाट का पानी पीना उतना बुरा नहीं, अगर वह मांग में सिन्दूर पड़ने के बाद हो। वह कहती है दीन अपनी जगह है और दुनिया अपनी जगह । उसका दावा है कि उसने दीन भी देखा है और दुनिया भी ।

मैं पच्चीस वर्ष की अविवाहिता हूं । देखने में बुरी भी नहीं । एक औरत के लिए पच्चीस की उम्र ऐसी नहीं होती, जिसे आप कच्ची उम्र कहें । वह दीन दुनिया सबको समझती है । मेरे सामने दीन है, मैं हर इतवार का व्रत रखती हूं, अलोना खाती हूं । सावन के मास का सोमवार कब रखना शुरू किया कुछ ठीक से याद नहीं । हर वर्ष नेम से व्रत रखती हूं, बिल्वपत्र पर चन्दन से राम नाम लिखती हूं । दूध और पानी शिवजी पर चढ़ाती हूं और उनके पैरों पर गिरकर वरदान मांगती हूं, "हे भोला नाथ, मुझे वर दो । हे पार्वती मैया मेरी मांग में सिन्दूर डालो ।" मेरी अंधी मां नित्य नेम से ठाकुर जी की पूजा करती है, अपनी बेटी के लिए वर मांगती है, पर वर है कि नहीं मिलता, तो नहीं मिलता।

दीन से थक कर दुनिया की ओर देखती हूं । दुनिया वाले कहते हैं, कि पहले मेरी मां लाला प्यारे लाल के घर बर्तन मांजती थी और सेठानी के कामों में मदद करती थी । मेरी मां का रंग तो सांवला था पर अंग अंग सौन्दर्य के रंग में रंगा, अपने यौवन के मद में चूर था । लाला भले आदमी थे, चाहे धोके में ही पकड़ा हो, एक बार हाथ पकड़ा तो फिर मरते समय ही छोड़ा । लाला के पास पैसा था, हिम्मत थी, उसी के बल पर लाला ने मेरी मां के पीछे बड़ी बड़ी लड़ाइयां लड़ीं, घर से, समाज से, और मरते दम तक सर नहीं झुकाया। यही लाला मेरे पिता थे । मेरी मां के अलावा लाला की गोरी मोटी सेठानी है, बड़ी हवेली है, बारह-पन्द्रह दुकानें हैं । लम्बा चौड़ा व्यापार है, बेटे बेटियां हैं, बहू दामाद हैं । सब कुछ भरा पूरा । मैं और मेरी मां इस भरे पूरे का अंग नहीं । हमारी छोटी सी हवेली है, जिसमें मैं हूं, मेरी अंधी मां है और हमारे खाने पीने का सहारा, हवेली के किरायेदार । लाला स्वर्गवासी होने से पहले यह सब कर गए थे ।

मां का कहना है कि मैं बनिये की बेटी हूं, इसलिए, बनिये के घर में ब्याही जाऊं, चाहे ज़िन्दगी भर कुआंरी ही बैठी रहूं । न मेरे लिए कोई बनिये का बेटा होगा, और न मेरी मांग में सिन्दूर पड़ेगा ।

ख़ैर यह तो मां की बात है उसी के साथ चली जायेगी । रह जायेगी, यह हवेली और हवेली की मालकिन मैं । हो सकता है तब हवेली की मालकिन को बहुत से वर मिल जांय ।

मेरी एक सहेली का कहना है, अगर मेरी मां अपनी जवानी में ही अंधी न हो जाती तो, और मुझे तेरह वर्ष की उम्र से ही दाब कर रखती, तो क्या मुझे दुनिया में वर ही न मिलता ? पर मैं तो ब्याह की उम्र होने से पहले ही, घाट घाट का पानी पी चुकी थी ।

इस दुनिया को देखते हुए ही, मेरी अंतरंग सहेली कहती है कि घाट घाट का पानी पीना उतना बुरा नहीं, अगर वह मांग में सिन्दूर पड़ने के बाद हो। वह कहती है दीन अपनी जगह है और दुनिया अपनी जगह । उसका दावा है कि उसने दीन भी देखा है और दुनिया भी । भगवान जाने ।

यह दीन का ही सहारा है कि आज तक मैं हट्टी, कट्टी जवान बैठी हूं । वरना घुट घुट कर मर गई होती । इन चार वर्षों यानी इक्कीस से लेकर आज तक की पीड़ा भगवान के सहारे ही सही है । लड़कपन की बात जाने दें, जब जिसकी गोद में जी चाहा बैठे, खेले और अपने घर आ गए । अब मैं आपसे क्या छिपाऊं, अब तक मेरे जीवन में बीसियों व्यक्ति आए और गए । मैं औरों की "राम राम छिः छिः ।" नहीं सुनती । अपने दीन की बात को जानती हूं, समझती हूं और निभाया भी है खूब । पर दुख की बात है कि मुझे आज तक दीन को समझने वाला कोई पुरुष नहीं मिला । बस भटकन ही रही ।

आपको चाहे विश्वास न हो पर बात सही है, कि पिछले चार वर्षों से मेरा जीवन बिलकुल सूना है । लांछनों का टीका लगाए मैं बराबर इस खोज में रही कि कोई तो माई का लाल ऐसा मिले जिसे अपने को सौंप कर मैं निश्चिन्त हो जाऊं । अब तो मैं बिलकुल जान गई हूं कि सौंपने में ही औरत की गति है। मैंने अब तक एक नहीं अनेक पुरुषों को देखा है, पर बाहर से, भीतर से नहीं । अगर, मैं आदमी का मन, अन्तर देखे बिना मर गई तो नारी जीवन अकारथ जायेगा । इतने भीतर से कि उसमें मुझमें अन्तर न रहे । शायद मां इसी को ब्याह कहती है । पर मैं पूछती हूं क्या मांग में सिन्दूर भर देने से अन्तर मिट जायेगा ?

मेरी एक और सहेली है, जिसने ब्याह के बाद नहीं, पहले ही कई घाटों

का पानी पिया था । पानी पीते पीते ही उसे एक ऐसा घाट मिल गया, जहां जनम जनम की प्यास बुझ गई । फिर क्या था । एक दिन वह दीन और दुनिया दोनों को आग लगा कर भाग गई ।

मेरा पक्का विश्वास है भागने वाला कायर है, चोर है । जो कुछ मिला है उसे दुनिया को दिखा कर रहो तो दीन है । कहीं दुनिया से अलग भी कोई दीन है । मैं अपना दीन नहीं छोड़ना चाहती, इसलिए दुनिया भी नहीं छोड़ती। भले ही इस दुनिया में दीन और दुनिया को एक साथ सम्हालने वाला न मिले।

ख़ैर ! यह तो हुई पोथियों की बातें । पर मेरे मन की बात यह है कि मैं चार वर्षों के अकेले पन से घबरा गई हूं । दीवारों से सर फोड़ने को जी चाहता है । स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ, निर्मल जल ज़रूरी है, पर जाती हुई ज़िन्दगी को बचाने के लिए, गंगा जल न मिले और नाली का पानी मिले तो दो बूंद मुंह में टपका कर ज़िन्दगी तो बचाई जा सकती है । घबराहट ही जानो, मैंने बिना सोचे समझे नाली में मुंह डाल दिया ।

भाग्य कहिए या भगवान की कृपा, मैंने घबराकर जिसे नाली का पानी समझा था वह तो गंगा जल से भरा घड़ा था । मैं धन्य हो गई । छक कर पिया जिसे खोजती थी, आख़िर मिल ही गया । 'जिन खोजा तिन पाइयां' और मुझे तो गहरे पैठने की भी ज़रूरत न पड़ी । वह ऐसा था कि बाहर से देखा, और भीतर से पहचाना जा सके । दिन दिन इतना मेरे पास आता गया कि तन का ही नहीं मन का भी अन्तर मिट गया ।

मां चार बोझ लकड़ी की बाट देख रही है । लाला की छाया में उसने दीन, दुनिया दोनों से आंखें मूंद ली थी । लाला ने उसे हाथों हाथ सम्हाला था मेरा और उसका एक होना मां सह न सकी । आंखों में, गुस्से और अपमान के आंसू भर कर बोली, "मैंने कहार के घर में जनम लेकर, बनिये का घर सम्हाला और तुझ बनिये की बेटी को चमार मिला ।" मां रोई पीटी । लाला की इज़्ज़त की दुहाई दी । बिरादरी के बेटों और उनके बापों को कोसा । ज़हर खाने की धमकी दी, गंगा मैया की गोद मांगी ।

बड़े संकट में पड़ी । मां का साथ देना बहुत ज़रूरी था, वह मर गई होती तो बात और थी । सोचा उससे सलाह लूं । आप सच माने, वह देवता है । दुनिया और दुनिया वालों की बातें नहीं जानता । मेरी बातें सुन कर, बड़े भोले पन से बोला, "जैसा तुम और मां ठीक समझो करो । मुझसे कहो तो कहीं दूर चला जाऊं, तुम्हारी याद के सहारे ही ज़िन्दगी काट लूंगा ।"

मां आख़िर मेरी मां ही है । रात गए मैं उसके पास गयी । वह सोयी

न थी । न जाने कैसी पीड़ा थी या जलन थी जिसमें वह छटपटा रही थी । मैं किसी को छटपटाता नहीं देख सकती । मां को समझाया, तू बिरादरी का मोह छोड़, तूने ही कौन सी बड़ी ऊंची जात में जन्म लिया था । मैं तो बिना ब्याह किए ही उसकी हो चुकी । ब्याह तो दुनिया को समझाने दिखाने की बात है । अगर तू बहुत दुखी है, तो तेरे जीते जी मैं चमार बिरादरी में ब्याह न करूंगी । बस अब हुई तेरे मन की । ले वेदना हरण गोली खा और सो जा । मन न दुखी कर । सबेरे तुझसे बात करूंगी ।

मां तो सो गई, ऐसा सोई कि कभी न उठी । जान पहचान भाई बिरादरी वाले आए, मां को ले गए । मैं कलेजा फाड़ फाड़ कर रोई । बच्चे अपना घरौंदा अपने आप बिगाड़ देते हैं, फिर मां की गोद में सिसकियां लेते हैं। अजब दुनिया है ।

कैसे संयोग की बात है । मेरी मां बताती कि जब मैं तीन महीने की पेट में थी, तभी मेरे बाप ने, मां को इस हवेली में लाकर रक्खा था । रसोई के पास वाली कोठरी में मेरा जन्म हुआ था । मेरा भी चौथा महीना परसों से लगेगा। और मेरी बेटी भी वहीं जन्म लेगी । मैंने उसे सब बता दिया है, और यह भी कह दिया है, कि अगर वह देवी देवता, और चार आदमियों के सामने मेरी मांग में सिन्दूर नहीं भरना चाहता तो न भरे । मुझे इसकी परवाह नहीं । पर वह यहीं आकर रहे, मेरे साथ, आने वाली बच्ची के साथ । रही दुनिया की बात, सो वह मैं सम्हाल लूंगी ।

वह भी कितना भोला है । कहता है हम दोनों साथ तो रहें । पर मैं अपनी होने वाली बेटी को अपनी और उसकी बेटी न कहूं। मैं कह दूं कि हम यह लड़की अनाथालय से लाये हैं । या यह मशहूर कर दूं कि मेरी सहेली जो भाग गई थी, अब बीमार है । मैं उसकी देख भाल करने, सेवा करने को जा रही हूं । और प्रसव काल तक कहीं और रहूं । बाद को बेटा या बेटी जो हो उसे अपनी सहेली का कहकर पालूं । अपने से ही छल, आदमी की ज़ात ही छलिया है । मैं अपने बच्चे को अपना बच्चा न कहूं, पति को पति न कहूं । डरपोक कहीं का । पगला दुनिया से डरता है, जो डरा सो मरा ।

आज सबेरे से जी घबरा रहा है । वह दो दिन से नहीं आया है । वैसे तो दिन में एक दो बार ज़रूर आता था । कोई पास नहीं है नहीं तो उसकी कोठरी तक भेजती । बुख़ार में ही न पड़ा हो । रात को भी राह देखती रही।

दूसरे दिन जमादारिन को चार पूड़ी और एक रुपया देकर उसे बुलाने को कहा । जमादारिन ने ज्यादा देर न लगाई, लौट कर बताया, "बम्बई से

उसकी नौकरी का तार आया था । पक्की नौकरी लगी है, सो चला गया कोठरी छोड़ कर ।"

"चला गया ? सब सामान लेकर ?"

"हां ।"

जमादारिन चली गई । मैं जहां की तहां बैठी हूं । मुझे विश्वास हो गया कि वह मुझसे पीछा छुड़ा कर भागा है । और भी लोग मुझसे पीछा छुड़ा कर भाग चुके हैं । पर इसका पीछा मैं नहीं छोड़ूंगी । बम्बई दुनिया के बाहर नहीं है, भागने वाले । मैं जानती हूं इस समय तुम्हारे हृदय में बड़ी पीड़ा होगी। हर भागने वाले को अनन्त पीड़ा का सामना करना होता है । मेरे सब कुछ । मेरी होने वाली बेटी के पिता, मैं तुम्हारी पीड़ा नहीं देख सकती । मैं वेदना हरण की गोली लेकर तुम्हारे पास ज़रूर आऊंगी ।

दो, चार, दस दिन बीत गए हैं । हवेली में ऊपर पड़ी रहती हूं । किराएदारों की खुसर पुसर नहीं सुनती । सुनूं भी क्या ? क्या मेरे बारे में लोग मुझसे ज्यादा जानते हैं ? जितनी बातें वे करते हैं, वे मेरी कुछ बातें ही तो हैं। जिन्हें बार बार दुहराते हैं । मेरी बहुत सी बातें तो उन्हें मालूम ही नहीं ।

कभी कभी बहुत जी भर आता है । मन होता है भगवान के पैरों पर गिर कर अपने पापों की क्षमा मांगू । फिर सोचती हूं भगवान से क्या कहना उन्हें तो राई रत्ती सब पता है । उसी ने तो मेरा कलेजा ईंट पत्थर का बनाया है । मैं क्या अपने आप बनी हूं ?

जैसे जैसे दिन बीतते हैं, मन शान्त होता जाता है । अब समझ में आ रहा है कि मैं क्या करूं ।

दुनियां को मैं नहीं डरती । जानती हूं, चार दिन बाद सब भूल जायेगी। याद रखने वाली होती तो चलती यह दुनिया ? फिर मैं कोई अनोखी नहीं हूं । सैकड़ों पड़ी हैं सभी अपने पेट में पलते पाप को पैदा कर गला घोंट कर, नदी तालाब में बहा नहीं देती ? तो क्या मैं अपने बे बाप के बच्चे को पाल नहीं सकती? मुझे अपना दीन मालूम है, और यह भी कहती हूं कि आज कलयुग में भी दुनिया से इतना दीन नहीं उठ गया है कि कोई अपने बच्चे को पाले और दुनिया पालने न दे । इस पर भी अगर ये दुनिया मुझे छोड़ती है तो शौक से छोड़ दे। बसा लूंगी मैं अपनी दुनिया। बना लूंगी मैं अपना दीन । हवेली तो अपनी ही है। न बनिये ब्राह्मण बसेंगे । भंगी चमार तो बसेंगे ।

●●●

तुम दोनों के लिए

मम्मी पापा सब खुशामद करते हैं । दीदी के घरवालों की मम्मी पापा ने इतनी खुशामद की कि शादी के पहले ही इतनी चीज़ें उन लोगों को दीं, इतनी चीज़ें दीं कि हद हो गई । हीरा तो मैंने पहले कभी देखा भी नहीं था । वही हीरे की अंगूठी और दुनिया जहान का सामान, काजू, बादाम, किशमिश, सब उन लोगों को दे दिया, और हम लोग ख़ाली हाथ लौट आए थे । क्या एक एक मुट्ठी काजू किशमिश मैं अपनी जेबों में भर नहीं सकता था ?

"पप्पू सुनना ज़रा बेटे ।"

मम्मी बड़े प्यार से बुला रही है, ज़रूर बाज़ार भेजना होगा । मैं कुछ भी जवाब नहीं देता, चुप बैठा रहता हूं ।

"देखो बेटे यह बुरी बात है । मैं बुला रही हूं और तुम गुम सुम बैठे हो । अगर घर में काम हो तो इस तरह करना चाहिए ? यहां आओ मेरे पास।" मम्मी अपनी कहे जा रही हैं ।

मैं कुछ बोलूंगा ही नहीं, हुआ करे काम । मेरा काम तो नहीं है न । जब से दीदी की शादी हुई है, उसके और जीजा जी के काम में लगी रहती हैं, अब प्यार भी उन्हीं दोनों को करती है । मैं तो बस नौकर हूँ घर का । जब बाज़ार जाना हो "पप्पू ऊ ऊ ऊ" ।

जब मम्मी का बस नहीं चलता तो प्यार से गुस्से पर उतर आती है, मैं उनकी नाराज़ी की परवाह नहीं करता तो फिर प्यार करने लगती है । पर अब वह पहले वाली मम्मी नहीं है, अब तो बस दीदी की मम्मी हो गई है ।

रेडियो पर गाना आ रहा है "क्या से क्या हो गया ... ।" सच ही क्या से क्या हो गया । वही मम्मी, वही दीदी, वही घर, पर अब सब कुछ बदल गया है मेरे लिए । न सब लोग मेरी बातें सुनते हैं, न मेरे जोक्स पर हंसते हैं सिर्फ नरेश जीजा जी की बातें करते रहते हैं । पापा भी उन्हीं का गुणगान करते रहते हैं । पप्पू तो उनके लिए मर गया है ।

दीदी को देखो कैसी बदल गयी है, उसका मेकअप ही खत्म नहीं होता। दिन रात शीशे के सामने बैठी रहती है । दिन भर साड़ियां बदलती रहती है, ऊपर से जब देखो तब घूमना । वह दिन भूल गई जब दिन भर एक ही सलवार-कमीज़ पहने रहती थी और इसी पलंग पर मेरे साथ कुश्ती लड़ती रहती थी ।

कितनी प्यारी थी तब ? मैं पटकनी देता तो खुश हो जाती और मम्मी से चिल्ला कर कहती, "मम्मी, पप्पू तो बड़ा तगड़ा हो गया है ।" हंसकर चिल्लाती "अरे रे । मेरा तो दम निकल गया । यह तो मुझे मार ही डालेगा। आज से इसके अंडे वंडे सब बन्द ।"

अब तो मेरी तरफ देखती ही नहीं, कुछ भी परवाह नहीं है । शादी में अपने लिए कितनी साड़ियां खरीदीं, मैंने अपनी पैन्टों के लिए कहा, तो मम्मी जी बीच में बोली "बन जायेंगी, बन जायेंगी, क्यों घबड़ाता है ।"

घबड़ा मैं रहा हूं या दीदी । पहले दिन रात अपना दहेज ही बनाती सम्हालती रहती थी । अब दहेज से छुट्टी हुई तो जीजा जी के पीछे लगी रहती है । चमची कहीं की ।

आखिर मम्मी मेरे पास आ ही गई । डांट कर बोली, "तू सुनता क्यों नहीं ? कितनी देर से बुला रही हूं । मैं तो कह रही थी कि शाम को जब दीदी जीजा जी बाहर खाना खाने जांय, तो तू मत जाना .. ।"

"मैं लालची नहीं हूं मैं क्यों जाने लगा ?" मुझे गुस्सा आ गया, बड़ी अच्छी बात बताने आई हैं ।

मुझे गुस्सा देख कर मम्मी नरमी से बोली, "तू समझता नहीं है ।"

सब समझता हूं । ग्यारह का पूरा हो चुका, बारह का हो जाऊंगा । बस थोड़े दिन की तो बात और है, थोड़ा और बड़ा हो जाऊं फिर मैं घर छोड़कर चला जाऊंगा । इतनी अकल मुझमें भी है कि कमा कर खा सकूं । जब चला जाऊंगा तब पता चलेगा मम्मी को । रो रो कर जान दे देंगी । रोएं चाहे पीटें मैं तो हरगिज़ नहीं आऊंगा । रहें अपनी बेटी के पास । शायद मम्मी समझ गई हैं कि मैं घर से भागने की बात सोच रहा हूं इसलिए मेरे पास आकर बैठ गई ।

"तुझे क्या हो जाता है पप्पू । कोई अपने घर आता है तो मुंह फुलाकर थोड़े ही बैठते हैं, खुशी खुशी काम करते हैं । जीजा जी क्या रोज़ रोज़ आयेंगे ? उनसे बातें कर, तू तो बस गुस्सा होना जानता है । अपने स्कूल के बारे में

उन्हें बता, अपनी टीचर्सकी बातें बता हंसी की ।"

"वे सुनते ही तो हैं मेरी बातें ? बस दीदी से बात करते रहते हैं । मेरा तो मज़ाक़ ही उड़ाते हैं । कल कहा जीजा जी ताश खेलिए । बोले 'हूँ ऽऽ जैसा तुम्हारी दीदी कहें'। और दीदी जी बोली 'आज नहीं ! आज बहुत थके हुए हैं सोना चाहती हूं ।' अब बोलो क्या करूं ?"

मम्मी हंसती हुई बोलीं, "तू तो पगला है ।" और उठकर चली गईं।

इतना गुस्सा आया कि अपनी सारी किताबें मम्मी और दीदी के सर पर पटक दूं । मुझे नहीं करनी किसी से बातें । मुझे तो पढ़ना है और अच्छे नम्बर लाने हैं । मुझे तो खुद ताश खेलना अच्छा नहीं लगता, मैं तो उन्हीं को एन्टरटेन करने के लिए कह रहा था ।

दोपहर को सब लोग खा पीकर उठे, तो दीदी बोली "शाम को आइसक्रीम खाने चलेंगे पप्पू" और अपने कमरे में चली गई । दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया ।

मम्मी पापा अपने कमरे में आराम कर रहे थे । मैं ही अकेला बैठा हूं इस कमरे में, मैं ही फालतू हूं इस घर में । पहले यही दीदी मेरे साथ, मेरे इसी कमरे में रहती थी, यहीं पर सोती थी और मेरे साथ पिक्चर भी जाती थी, एक बार हम "क्रेज़ी बॉय" देखने गए थे तो भाग भाग कर बस पकड़ी थी, बड़ा मज़ा आया था । पर अब तो वही दीदी सीधे मुंह बात ही नहीं करती । जीजा जी की चमचागीरी में लगी रहती है । कभी चाय ले जा रही है कभी कॉफ़ी । तौलिया लेकर बाथरूम में भागी जा रही है । बिलकुल चमची है । सौ बार चमची ।

मम्मी पापा सब खुशामद करते हैं । दीदी के घरवालों की मम्मी पापा ने इतनी खुशामद की कि शादी के पहले ही इतनी चीज़ें उन लोगों को दीं, इतनी चीज़ें दीं कि हद हो गई । हीरा तो मैंने पहले कभी देखा भी नहीं था । वही हीरे की अंगूठी और दुनिया जहान का सामान, कपड़े वग़ैरह मैं और पापा दोनों लेकर नरेश जीजा जी के घर तिलक चढ़ाने गए थे । सारे का सारा सामान, काजू, बादाम, किशमिश, सब उन लोगों को दे दिया, और हम लोग ख़ाली हाथ लौट आए थे । क्या एक एक मुट्ठी काजू किशमिश मैं अपनी जेबों में भर नहीं सकता था ?

सामान गया सो गया अब दीदी भी गई । मेरे कोई दूसरा भाई भी नहीं, बहन भी नहीं, वरना इस दीदी की तो मैं शकल भी न देखता । अब तो

मेरे बुरे दिन आ गए हैं ।

"अरे तुम यहाँ गर्मी में बैठे हो ? पंखा भी नहीं चलाया ? उठो, तैयार हो जाओ बाहर चलेंगे ।"

"मैं कहीं नहीं जाता ।"

"क्यों क्या हो गया ?" दीदी आंखें फाड़ फाड़ कर मुझे देख रही थी।

पूछ रही है क्या हो गया ? इसे कुछ पता ही नहीं है । झूठी कहीं की। मैं अकेला पड़ा रहूं और पूछती है क्या हो गया ? हाथ में पानी का ग्लास था । गुस्से में दीदी की ओर फेंक दिया । दीदी बच गई चोट नहीं लगी ।

"देखिए मम्मी ! ये कितना बदतमीज़ हो गया है मुझे ग्लास फेंक कर मारा है । चिढ़ता रहता है हर वक्त, पता नहीं क्या चाहता है ?"

"मत बोलो उससे । छोड़ दो उसे अकेला । इसका दिमाग़ ख़राब हो गया है ।" मम्मी ने दीदी को सिखाया ।

हाँ हाँ अकेला छोड़ दो । मैं अकेला ही रहूंगा । इतना गुस्सा आया कि तार पर सूखते कपड़े ज़मीन पर फेंक दिए । दीदी की साड़ियां, जीजा जी की शर्ट । नया तौलिया सब धूल में लोट रहे थे । बड़ा मज़ा आया ।

इतने में दीदी की खुसर पुसर सुनाई दी "देखिए मम्मी ये इस तरह का व्यवहार करता है ? नरेश अपने मन में क्या कहेंगे कि इसका भाई इसकी ज़रा इज़्ज़त नहीं करता । नरेश इसकी इतनी खुशामद करते रहते हैं पर यह उनसे भी ठीक से नहीं बोलता ।"

"मेरी खुशामदें ? या तुम्हारी मिन्नतें । झूठी कहीं की ।"

हंसते हुए नरेश जीजा जी बाहर आ गए हैं, "तुम ठीक कहते हो पप्पू, मुझे तुम्हारी दीदी की बहुत मिन्नतें करनी पड़ती हैं ।"

मम्मी, दीदी दोनों से तो यही अच्छे हैं, पर इनको भी सज़ा मिलनी चाहिए, जिन्होंने मेरी दीदी का दिमाग़ ही बदल दिया । मैं तो किसी से भी नहीं बोलूंगा । कोई मुझे प्यार नहीं करता । सब मेरा अपमान करते हैं ।

दीदी जीजा जी अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर तैयार खड़े हैं, "मम्मी हम लोग बाहर जा रहे हैं ।"

"हाँ ! हाँ ! जाओ ! जाओ ! पर खाना वाना खाकर मत आना, मैं कुछ अच्छी चीज़ बना रही हूं तुम लोगों के लिए ।"

दोनों चले गए मुझसे पूछा तक नहीं, जैसे मैं घर में हूं ही नहीं। मम्मी

बुदबुदा रही है, "खुश रहें दोनों ।"

बे, बे, बे मैं मन ही मन मम्मी को मुंह चिढ़ा रहा हूं । वे दोनों खुश रहें, और मैं चाहे रोता रहूं । अबकी बार जी चाहता है मम्मी को खूब पीटूं । पीट नहीं सकता । मुंह तो चिढ़ा सकता हूं । अब तो मेरी तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं देती मम्मी । अपनी बारी में कितना रोती हैं । जब नाना जी मरे थे तो पता चला था । कैसी रोई थीं । जब मैं भी मर जाऊंगा तब पता लगेगा ।

"उठ पप्पू, हाथ मुंह धो, कपड़े बदल और खेलने जा । जाने दो नरेश को तुझे तो बाद में समझूंगी मैं ।" ऊपर से शांत मम्मी के मन में गुस्सा भरा था ।

जल्दी ही वह शुभ दिन आ गया । दीदी और जीजा जी के जाने की तैयारियां होने लगीं । मम्मी दीदी की तैयारियों में लगी थी । मैं अपने कमरे में बैठा कुढ़ रहा था । दीदी मेरे कमरे में आई ।

मैंने दीदी की ओर देखा । सचमुच उसकी आंखों में आंसू थे । मैं समझ गया, दीदी मुझे मनाने आई है । बड़ा अच्छा लगा । दीदी बोली, "अब तो गुस्सा थूक दे पप्पू, अब तो मैं जा रही हूं ।"

पहले तो मैं बुत बना बैठा रहा, सोचा कुछ न बोलूं पर मुंह से निकल गया, "फिर रुक जा ना । नरेश जीजा जी को जाने दे ।"

"कैसे रुक जाऊं पप्पू ? जाना तो पड़ेगा ही ।"

दीदी चुप बैठी मेरी ओर देख रही थी । मेरा मन हुआ दीदी की गोद में सिर रख कर फूट फूट कर रो लूं । दीदी बोली, "तू आ जाना न छुट्टियों में नागपुर मेरे पास ।"

नागपुर का नाम सुनते ही मेरा पारा चढ़ गया "मैं नहीं आता। हम लोग तो श्रीनगर जायेंगे ।"

मेरी अकड़ काम कर गई । दीदी के आंसू बहने लगे । बहुत दुखी होकर उठ कर चली गई । मुझे भी बड़ी दया आई दीदी पर । बेचारी दीदी करे भी तो क्या ? यह सब मम्मी पापा का कसूर है पहले तो शादी करके उसे घर से निकाल दिया । अब नरेश जीजा जी उसे दो मिनट के लिए भी नहीं छोड़ेंगे - वह बेचारी न इधर की रही न उधर की रही । अब मम्मी उसको तरह तरह की चीज़ें देकर खुश कर रहीं हैं । जाने के नाम से कितनी उदास हो गई दीदी ? मुझे सच में बड़ा तरस आ रहा था उस पर ।

घर में खूब ज़ोर शोर से तैयारियां हो रही थी, दीदी के लिए फल,

मिठाइयां, रास्ते कें लिए खाना, साड़ी वगैरह, न जाने क्या क्या । मन दुखी हो रहा था, कुछ अच्छा नहीं लग रहा था । मैंने अपनी स्टाम्प बुक उठा ली, यूं ही देखने लगा । ये सारे के सारे टिकट हम दोनों ने मिलकर इकट्ठे किए थे। मैं कुछ सोचता हुआ, स्टाम्प बुक देखने लगा ।

मम्मी को कुछ याद आया और भागती हुई मेरे पास आई "जा पप्पू, जल्दी जा धोबिन से कहना, दीदी की प्रेस वाली साड़ियां लेकर चल, वह जाने वाली है ।"

मम्मी की नज़र मेरी स्टाम्प बुक पर चली गई, पास में कॉइन्स भी पड़े थे, वह भी मैंने और दीदी ने बहुत से देशों के नए भी पुराने भी, ढेर सारे इकट्ठे किए थे । मम्मी को एक दम से गुस्सा आ गया ।

ये स्टाम्प और कॉइन्स देखने का वक़्त है ? मैं तो दुखी हो गई इस लड़के से । घर में इतना काम । लड़की जा रही है, और यह अलग-थलग बैठा स्टाम्प्स देख रहा है । कुछ अकल भी तेरे है पप्पू ?"

मैं चुप बैठा रहता हूं । पापा उठते हुए कहते हैं "मैं चला जाता हूं धोबिन के घर ।" मम्मी फिर काम में लग जाती है ।

थोड़ी देर बाद मेरे कमरे की अलमारी से थर्मस निकालने आती है । मुझे देखते ही फिर बरस पड़ती है, "यह क़ैंची क्यों निकाली है ? देखो तो कितने काग़ज़ फैला रक्खे हैं । ठहर जा तुझे बताऊंगी ।" दांत पीसती मम्मी बाहर चली जाती है ।

मैं रंगीन काग़ज़ ढूंढता हूं, डोरी ढूंढता हूं, गोंद पापा के कमरे से ले आया हूं और जल्दी जल्दी अपना काम करने में लगा हूं । आख़िरकार पैकेट बन ही गया ।

घर में नरेश जीजा जी को छोड़कर सब लोग उदास हो गए हैं । काम में लगे रहकर पापा भी अपनी उदासी छिपा रहे हैं । ये लोग भी दीदी के जाने से मेरी तरह ही दुखी हैं । मम्मी तो चुपके चुपके रो रही हैं । पर मैं नहीं रोऊंगा ।

टैक्सी आ गई । मम्मी दीदी के सिन्दूर लगा रही है । जीजा जी का टीका भी हो गया । दीदी मम्मी के कंधे पर सर रखकर धीरे धीरे रो रही है । मैं अपने कमरे में पैन ढूंढता हूं । ऐन मौके पर कोई चीज़ नहीं मिलती । मैं जल्दी से अपने पैकेट पर लिखता हूं, "तुम दोनों के लिए - पप्पू ।"

दीदी मेरे पास आती है, मैं जल्दी से पैकेट को तौलिए के नीचे छिपा

देता हूं । दीदी ने मुझे अपने से चिपटा लिया है और रो रही हैं । मुझे भी ज़ोर की रुलाई आ रही है, पर अपने को रोकता हूं, पापा की तरह ।

सामान टैक्सी में रख दिया गया । जीजा जी और दीदी दोनों टैक्सी में बैठ गए, जैसे ही टैक्सी चलने को होती है, मैं झपट कर अपना बनाया पैकेट दीदी की गोद में धीरे से रख देता हूं, खन्न की धीमी आवाज़ आती है, टैक्सी आगे बढ़ जाती है ।

पापा ने, मम्मी ने पैकेट देख लिया है, मम्मी मुझे अपने पैरों में चिपटा लेती है, प्यार से पूछती है, "क्या तूने अपने सारे कॉइन्स मीरा को दे दिए ?"

मैं गर्व से उत्तर देता हूं "स्टाम्प बुक भी, बिचारी उसने भी तो टिकट इकट्ठे किए थे ।"

मम्मी मुझे गले से लगा लेती हैं, "तू भी पप्पू, बस .... ।"

●●●

'कौन दिसा से उठे है बदरा..'

एक, दो, चार, दस, बीस दिन बीत गए, मक्खन न लौटा । सूना घर खाने को दौड़ता । कमरे में पास ही मक्खन की चारपाई खाली पड़ी थी । रमदेइया बड़ी देर तक पड़े पड़े रोती रही फिर सो गई । सपने में देखा उनके कमरे के कोने में धुंआ सा उठ रहा है, धीरे धीरे वह धुंआ एक बालक बन गया जिसके हाथ, पैर कटे हुए थे, वह रमदेइया को कटे हुए हाथ पैर दिखा रहा था, फिर धीरे धीरे रमदेइया की आंख से ओझल हो गया ।

वह अहीरों की बहू थी । गांव में उसे सभी जानते । जब लाला की बगिया में नीम पर मोटे मोटे रस्सों से झूला पड़ता, उसी दिन से उसकी सास चिल्लाने लगती, "देखूं तो कैसे जाती है झूला झूलने । टांग तोड़कर धर दूंगी। और शाम को जब लाला की बिटिया दूध लेने आती, तो रमदेइया घूंघट उठा कर धीरे से पूछती, "आज झूला पड़ गया बिट्टी ? अम्मा सूं कहियो बड़ो पटरा बंधबामें ।"

पर बिट्टी को कुछ और याद आ जाता, चिल्ला कर कहती "कल तूने दूध में पानी क्यों मिलाया था भौजी ?"

"आज तो और ज्यादा मिलाऊंगी", रमदेइया इतराती । "जानती हो बिट्टी पानी मिला दूध पीने से गोरा दुल्हा मिलता है ।"

"चल बड़ी आई बन के ।" बिट्टी बिगड़ती ।

रमदेइया को बिट्टी का बिगड़ना, खीजना बड़ा भला लगता । चट दूध का फेना उठा कर बिट्टी के गाल पर मल देती, और इतनी ज़ोर से चुटकी काटती कि गाल लाल हो जाता । बिट्टी रोने लगती । सास का कर्कश स्वर सुनाई पड़ता "क्या है री । भौत इतरावे है ?" बिट्टी रोती चली जाती । रमदेइया का मन होता, झट से बिट्टी को गोद में उठा ले । कैसे छोटे छोटे पैर हैं । हाथ तो देखो कैसे नरम, नरम । रमदेइया को बच्चे बहुत प्यारे लगते हैं ।

तीजों के दिन रमदेइया की सास के सारे प्रपंच व्यर्थ जाते । लाला की मां उसकी सास से आकर सिफ़ारिश करती "भेज दे ग्वालिन, बहुएँ बार

बार बुलाती हैं । घड़ी दो घड़ी यह भी झूल लेगी ।"

बस फिर क्या, रमदेइया की बग़ीचे में पहुंचने भर की देर होती । सारी बगिया, उसकी ऊंची आवाज़ से गूंज उठती, "कौन दिसा से उठे है बदरा कौन दिसा को जायं ।"बिट्टी की मां डर के मारे चीख़ चीख़ पड़ती, पर रमदेइया पेंग बढ़ाना बन्द न करती । लाल ख़ूनी रंग की धोती उड़ उड़ कर उसकी सुडौल टांगो को खोल देती, दांतो में दबा घूंघट, बार बार उलट जाता । गाँव के नौजवान, बहुत दूर से खड़े खड़े आंखों की प्यास बुझाते । लाला की बगिया के भीतर क़दम रक्खें तो हड्डी पसली बराबर हो जायं ।

बिट्टी की मां और रमदेइया, हमउम्र ही होंगी । दोनों की खूब पटती। बड़े बूढ़ों के सामने हंसती खेलती रहतीं और अकेले में अपने अपने मन की दुख, सुख की बातें करतीं । रमदेइया का रूप, रंग, उम्र और उठान देख कर बिट्टी की मां का जी कचोटता । पूछती, "तेरा देवर कितने बरस का होगा ?"

"यही तेरह चौदह का ।"

"और तू ?" बिट्टी की मां पूछती ।

"होऊंगी कोई एक चौबीस-पच्चीस बरस की ।"

"कैसा बुरा रिवाज़ है तुम लोगों में ।" बिट्टी की मां कहती और रमदेइया का धीरज छूट जाता । भरे मन से एक एक दिन की बात याद कर कर के बताती, "यूं तो भाभी, मेरा आदमी भी मुझसे चार बरस छोटा था । पर जिन्दा रहता तो खासा जवान निकलता । मैं तो उसके सामने छोटी लगती । करम को क्या कहूं वह भी न रहा । गौने को आई थी, पर बोल चाल न हुई थी । दो दिन के बुखार में चल बसा । लू लग गई थी । कोई समझ ही न पाया कि क्या हुआ है । तब तो इतना न लगा था, जितना अब याद आता है। कलेजे में हूक सी उंठती है उसे याद करके । ये देवर तो सास की गोद में था मेरे ब्याह में । मेरी मां होती, तो लड़-झगड़ कर दूसरा घर कर देती, पर मेरा बाप तो कुछ सुनता ही नहीं ।"

"और तेरी सास क्या कहती है ?" बिट्टी की मां ने टोह ली ।

"कहेगी क्या ? जब देवर सोलह साल का होगा तो उसी के साथ घर कर देगी । हमारे रीत ही ऐसी है कि अगर घर में देवर हो तो भाई की विधवा दूसरे घर नहीं जा सकती । चाहे दस बरस बैठी रहे । और मेरी सास को तो चौका चूल्हा, गोबर पानी करने वाली चाहिए, इसलिए मुझे काहे को छोड़ेगी ।" रमदेइया का मन दुखी हो गया । आंखें भर आईं, इधर उधर देखकर आंसू पी गई ।

"ये माला कहां से पा गई ?" बिट्टी की मां ने बात बदली ।

रमदेइया, कुछ झिझकी, फिर सम्हल कर बोली, "मक्खन गया था मेले में, सो लेता आया ।"

"अच्छा तो तैनें मक्खन से दोस्ती गांठ ली है ।" रमदेइया को बिट्टी की मां के बात करने के ढंग से हंसी आ गई "कैसी बातें करती हैं भाभी ? मैं तो मक्खन की चाची लगती हूं, रिश्ते के जेठ का बेटा है । फिर वह तो बड़ा बोदा है ।" बात ख़त्म होते ही रमदेइया हंसते हंसते उठ गई । बिट्टी की मां को भी बहुत काम हैं ।

जाड़े के दिनों में गांव में सरे शाम ही कुत्ते भूंकने लगते हैं । पर उस दिन काफ़ी रात गए अहीरों के मुहल्ले में हाहाकार मचा हुआ था । सभी घरों के बूढ़े जवान लाठी ले ले कर रमदेइया के घर के सामने जमा थे । हर बहादुर की यह कामना थी कि उसी की लाठी से रमदेइया का सर फूटे । सारे गांव में सनसनी फैली थी । अपनी जानकारी के अनुसार सभी सूचना दे रहे थे कि कब, किसने, उसे कहां देखा था । पर सवाल यह था, इस वक्त, इतनी रात गए वह है कहां ? कोई औरत कहती, मैंने तो उसे लोटा लेकर खेतों की तरफ जाते देखा था । किसी मनचली की ज़बान न मानती कहती "मक्खन का भी तो पता नहीं है ।" तीसरी रहस्योद्घाटन करती "कहीं दोनों .... ." और सबकी दबी दबी हंसी मर्दों तक पहुच जाती, जो सब कुछ जान कर भी मुंह से कुछ कह नहीं रहे थे, बस गुस्से में लाठी से जमीन पर ठक ठक किए जा रहे थे ।

बिट्टी की मां अपनी रज़ाई में बिट्टी को दुबकाए पड़ी थी, पर बिट्टी की आंखों में नींद का नाम नहीं । धीरे धीरे कांप रही थी । मां ने पूछा "जाड़ा लगता है बिट्टी ?"

"नहीं अम्मां ।" फिर कुछ रुककर बोली, "अम्मां ! वह जो भूसे वाली कोठरी है न ?"

"हां ! हां ! क्या है वहां ?" बिट्टी की मां ने पूछा ।

"वहीं छिपे हैं ।"

"कौन ?"

"रमदेइया और मक्खन ।" बिट्टी को हंसी आ गई । रहस्य को प्रकट करके उसका जी हल्का हो गया था ।

चुप ! चुप ! तूने कब देखा ?

शाम को अम्मा । सच्ची अम्मा । चलो दिखा दूं । बिट्टी ने विश्वास दिलाया । सच ही कोठरी में दम साधे दोनों जान की ख़ैर मना रहे थे । मक्खन

बार बार पछता रहा था, कहां से इस चुड़ैल के चक्कर में पड़ गया । अब घर जाकर सर तुड़वाने की हिम्मत भी उसमें न थी और न रमदेइया के साथ ही जाना चाहता था । पर चुड़ैल रमदेइया अब पीछे हटने वाली न थी । बार बार प्यार से मक्खन को समझा रही थी कि भोर में चार बजे निकल चलेंगे और सबेरे सबेरे बस पकड़ कर एटा को चल पड़ेंगे । तू पैसों की चिन्ता मत करियो हैं मेरे पास बहुत हैं । रमदेइया में ग़ज़ब की हिम्मत आ गई थी और वह इस मौक़े का फ़ायदा उठाना चाह रही थी । कहती रहे दुनिया जो उसके जी में आए, हम दोनों क्या सुनने को आयेंगे ।

मक्खन बेचारा डरा सहमा हुआ रमदेइया के सामने लाचार था । ऐसी ही विवशता में पूस की भयानक सर्दी में उसे रमदेइया के साथ भागना पड़ा ।

रमदेइया ने सम्हल कर कोठरी के बाहर पांव रखा ही था कि कोई चीज़ पैर में चुभ गई । झुककर देखा, बिट्टी की गुड़िया का इक्का था उसी की कील थी । बिट्टी के छोटे छोटे नरम हाथ पैर, सूरत नाच गई आंखों के सामने।

एक बार तो रमदेइया के मन में मरोड़ सी उठी, फिर कदम तेज़ी से उठने लगे । अभी गांव की हद भी पार न की थी कि तेज़ी से बिल्ली रास्ता काट गई । रमदेइया के मन में शंका कांपी, पैर डगमगाए, भगवान करे सब अच्छा ही हो और वह बढ़ती गई ।

इसी तरह ज़िन्दगी में बार बार रमदेइया के पैर कांपे पर वह चलने से रुकी नहीं, बढ़ती ही गई । न जाने कौन सी अदृश्य शक्ति उसे बढ़ने की प्रेरणा और साहस प्रदान करती रही ।

शहर आकर रमदेइया ने अपना घर बनाया, कोठरी किराए पर ली, ज़ेवर बेचे और कितनी ही मानसिक, सामाजिक कठिनाइयों को जीतकर भविष्य के सुख स्वप्न संजोए । पर मक्खन उसका साथ न देता । वह गांव छोड़कर रमदेइया के साथ भाग आने की भूल पर हमेशा पछताता रहता । रमदेइया हर तरह से उसके चारों ओर बन्धन मजबूत करती रहती और वह उन्हीं बन्धनों में छटपटाता रहता । रमदेइया कहती "मक्खन तू मुझे अब 'काकी' कहना छोड़, इस तरह हम कैसे रह पायेंगे ?" पर मक्खन अपनी कुछ भूलों के लिए, समाज से लड़ने को तैयार न था, भले ही अगर ये समाज उसे उसकी 'करनी' की कोई सज़ा देगा तो वह स्वीकार कर लेगा ।

मुहल्ले के लोग, इन चाची भतीजे के सम्बन्धों पर तरह तरह की शंकाएं करते, रमदेइया सबका सामना करती, कभी रोती, झींकती तो कभी हंस बोल कर वक्त काटती ।

ज़िन्दगी यूं ही घिसटती जा रही थी कि रमदेइया एक दिन आसमान से गिर पड़ी । उसने जाना कि उसके पेट में एक प्राणी पनप रहा है । जैसे ही उसे पता चला तब से बराबर रोती रही, मंझधार में फंसी थी । न डूबते बनता न उबरते । दिन रात न जाने कहां से सुने उपचार करती रहती, कभी बांस की पत्ती उबाल कर पीती, तो कभी दस साल पुराना गुड़ उबालती, आखिर एक दिन उसे अपने प्रयत्नों में सफलता मिल ही गई । अपनी ही कृति का विध्वंस देखकर रमदेइया कुछ क्षणों के लिए संज्ञा शून्य हो गई । फिर जी कड़ा कर अपनी और मक्खन की सामाजिक मर्यादा बचाने के लिए कार्य रत हो गई।

रमदेइया के कुकृत्यों की खबर किसी को न लगी । पर वह खुद ही उदास रहती । मक्खन की ओर भी उसका ध्यान न जाता । अक्सर बिट्टी याद आती, उसकी धुंधली सी तस्वीर, पर न जाने कब कैसे, धुंधली तस्वीर एक छोटा सा पिंड बन जाती । प्राण हीन, स्वरूप हीन, रक्त में सना पिंड । उसे चक्कर सा आ जाता, रोने को जी चाहता पर रो न पाती । वह दिन दिन पीली पड़ती जा रही थी । तन और मन की शक्ति शालिनी रमदेइया, अब तन से ही नहीं मन से भी दुर्बल हो गई थी । कैसे झेलेगी इस ज़िन्दगी को ? आगे क्या होगा? एक बड़ा सा प्रश्न चिन्ह सामने खड़ा रहता ।

इसी तरह कुछ महीने बीते, रमदेइया की गति रामदेइया जाने । यह सब मक्खन की समझ के बाहर भी है । पर क्या करे रमदेइया, अब उसे फिर मितली आने लगी थी । सिर भारी रहता, पर उसने मक्खन से कुछ न कहा । जहाँ तक होता मक्खन से दूर रहती, उसे डर था कि अगर मक्खन को मालूम हो गया तो वह उसे उन कुकृत्यों को दुबारा दुहराने को कहेगा ।

वह मन ही मन सोचती, पहले चूक गई पर अब न चूकूंगी, किसी का डर पड़ा है । बात छिपे चाहे खुले । फिर मक्खन को अपने से बांधने का यही तो एक रास्ता है । अपना अंश देखेगा तो कहीं भागेगा नहीं । बाल बच्चे की माया ही ऐसी होती है । मक्खन से बात छिपी न रही, सारे मुहल्ले में कानफूसी होने लगी । औरतें ताने देतीं तो रमदेइया ज़रा भी न डरती । झट से जवाब देती, "इसमें ताने मारने को क्या धरा है, कौन नहीं जानता कि मैं मक्खन के घर बैठ गई हूं । जब दो साथ रहेंगे तो संसार तो बढ़ेगा ही ।"

पर मक्खन से निपटना इतना आसान नहीं था । जब भी रमदेइया और मक्खन साथ होते एक दूसरे पर आरोप लगा कर लड़ने लगते । मुहल्ले वालों ने तो रमदेइया की साफगोई स्वीकार ली पर मक्खन स्वीकारे तब न । इसी कशमकश में छः महीने बीत गए और १५ दिन सातवें के भी । आलस्य से भरी रमदेइया, लेटी लेटी अनुपम सुख का अनुभव करती । अगर बिटिया हो

तो बस बिट्टी जैसी, गोरी, सुडौल नाक वाली, छोटे पैर नरम हाथ वाली बिट्टी ज़रूर एक दिन उसकी गोद में आयेगी । रमदेइया को पेट में कुछ हिलने डुलने का आभास हुआ । आनन्द की एक लहर रग रग में दौड़ गई । जीवन ! प्राण! और इसका निकटतम स्पर्श ! कितना सुहाना होता है आज रमदेइया जान गई थी ।

पर मक्खन की परेशानियों का अन्त ही न था । वह कुछ और ही सोच रहा था । उसे रमदेइया बड़ी चाल बाज़ लगती, वह अपना पाप ज़िन्दगी भर के लिए उसके सिर पर थोप कर मक्खन को हमेशा के लिए बांध लेना चाहती है । मक्खन के दोस्तों ने समझाया, "मानेगी कैसे नहीं । तुझे अपनी जान फंसानी है ? पाप काट जल्दी ।"

मक्खन ने तरह तरह से रमदेइया की खुशामद की । पर वह न मानती ज़्यादा कुछ कहता तो रोने लग जाती । रोने पर मक्खन को गुस्सा आता, "अरी मरी क्यों जाती है । बच्चे बहुत होंगे, पर पहले हम दोनों समाजी रीति से ब्याह तो कर लें । ऐसा बच्चा किस काम का जो न पुरखों को पानी दे सके और न उसे अपने घर की ज़मीन जायदाद में हिस्सा मिल सके । मान जा रमदेइया, इस बार डाक्टर से सुई लगवा ले । इतना समझ ले पाप फलता नहीं । तू बेशरम बन कर दुनिया को मुंह दिखा ले, पर भगवान से क्या कहेगी । तेरी गोद कभी न भरेगी ।"

अन्त में रमदेइया का मनोबल टूट गया । एक दिन कांपते हाथों से उसने डाक्टर की दी दवा खाई और कमर में सुई भी लगवा ली । पर उसके मन में भरोसा था कि इस सुई वुई से कुछ नहीं होने वाला है । बस मक्खन का दिल रह जायेगा ।

एक रात को जब रमदेइया, प्रसव पीड़ा से जाग उठी तो उसे अपने विश्वास के थोथेपन का भान हुआ । एक बार उसका मन फिर मचला उसने मक्खन को अस्पताल ले चलने को कहा, पर वह निर्विकार रूप से बैठा बीड़ी पी रहा था । सुबह पांच बजे रमदेइया की कोठरी से आती चीखें दूसरों ने भी सुनी । मक्खन रमदेइया के पास से उठकर चला गया और कोठरी का दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दिया । कुछ क्षणों के बाद रमदेइया को होश हुआ, उसने एक शिशु को जन्म दिया था । एक झीने आवरण में लिपटा, नन्हा प्राणी, पूरा शिशु, हाथ पैर और उंगलियों वाला, वह सब कुछ भूलकर, उसे बड़े गौर से देख रही थी । कैसी रचना है भगवान की, हाथ पैर उंगलियां इतनी छोटी हो सकती हैं ? नन्हें प्राणी का पेट चार छः वार ऊपर नीचे हुआ उसके बाद सब खत्म । रमदेइया जान गई वह प्राणी मर चुका है । कलेजे में पीड़ा हुई, विकल मन ने चाहा बच्चे को उठाकर, छाती से लगा कर फूट फूट कर रोए । पर फूट

फूट कर रोने का भी तो उसका भाग्य नहीं था । सब कुछ सहना था और रहना भी चुप था ।

मक्खन नज़रें नीचे किए किए आया और मरे हुए जीव को थैले में डालकर ले गया । रमदेइया का जी चाहा कि मक्खन के पैर पकड़ कर कुछ कहे पर न उसमें मक्खन से नज़रें मिलाने का साहस था और न मक्खन ही अपनी नज़रें उठा पा रहा था ।

इस बात को अभी, दस दिन भी न बीते थे । कि रमदेइया ने सुना गांव से उसका छोटा भाई मक्खन के लिए उसके बाप का संदेशा लाया था । धीरे धीरे रोज़ ही गांव का कोई न कोई आदमी आता और गुप चुप बातें चलती रहतीं । रमदेइया कुछ न पूछती । पर मन शंकित ज़रूर हो उठता था । अब उसकी समझ में आ रहा था किसी को बांधा नहीं जा सकता । एक दिन मक्खन बोला "दो चार दिन को गांव जा रहा हूं । दादा ने बुलाया है जल्द ही लौटूंगा।"

एक, दो, चार, दस, बीस दिन बीत गए, मक्खन न लौटा । सूना घर खाने को दौड़ता । कमरे में पास ही मक्खन की चारपाई ख़ाली पड़ी थी । रमदेइया बड़ी देर तक पड़े पड़े रोती रही फिर सो गई । सपने में देखा उनके कमरे के कोने में धुंआ सा उठ रहा है, धीरे धीरे वह धुंआ एक बालक बन गया जिसके हाथ, पैर कटे हुए थे, वह रमदेइया को कटे हुए हाथ पैर दिखा रहा था, फिर धीरे धीरे रमदेइया की आंख से ओझल हो गया । रमदेइया ने घबराकर मक्खन को पुकारा इतने में आंख खुल गई । उसे तरह तरह की दुश्चिन्ताएं सता रहीं थी । उसे लग रहा था जैसे स्वप्न में बच्चा आंखों से ओझल हो गया, वैसे ही मक्खन भी हो जायेगा ।

दिन बीतते गए, रमदेइया को ख़बरें पहुंचाने वाले पहुंचा जाते । यहाँ से जाते ही पाँच दिन के भीतर मक्खन का ब्याह हो गया । मक्खन की मां कहती, "अरे मेरा मक्खन तो सीधा सादा है, उसी बेशर्म ने बहकाया था । भला उसके पीछे क्या हम अपना बेटा छोड़ देते । आदमी का क्या है सब घूम फिर कर घर वापस आ जाते हैं । कलंक तो औरत को ही लगता है जो घर से बाहर पैर धरे । क्या उस बदज़ात के पीछे, घर, ज़मीन, जायदाद छोड़ देगा मक्खन? मरे वहीं शहर में । मुंह दिखाने लायक भी न रही ।"

मक्खन के तो बाल बच्चे भी हो गए और रमदेइया अकेली की अकेली। घर बैठी दरियां बुनती रहती, बेटियों को शादी ब्याह में देने के लिए लोग उसके घर से दरियां ख़रीदते, भैंस पाल ली थी । कुछ घरों में दूध बेचती, मट्ठा व्यवहार में बांट देती, घी का दाम लेती । किसी का कोई कामकाज हो रमदेइया बढ़

चढ़ कर काम करती, गेहूं बीनती धोती, दालें बनाती, बरी मुगौरी बनाती, हज़ार काम होते हैं । इसी तरह रहते उसे इस मुहल्ले में सात वर्ष हो गए ।

रमदेइया के व्यवहार से, काम से, सभी उसके साथ बना कर रखते। पिछली बातें भूल सी गए थे । कभी मुहल्ले की औरतें चटकारे भरने के मूड में होतीं तो रमदेइया की पिछली बातें नए आने वालों को बता बता कर हंसती । पर हर भले घर में कामकाज में रमदेइया की ज़रूरत ज़रूर पड़ती, सभी बुलाते। छिपा अपमान और लांछन ओढ़ कर रमदेइया सबकी खुशी ग़म में शामिल होती, सुख में हंसती दुख में रोती । बेटियों की शादी हो या बेटों की शादी का रतजगा, रमदेइया के नाच गाने के बिना जमता ही न था । नाचते गाते थक जाती तो अपने से पूछती, मैं क्या हूं, सधवा न विधवा, पुत्रवती न बांझ । मुहल्ले की बुढ़िया उसे मायाविनी बताती, मन मोहनी कहती और धीरे से अपनी बहू बेटियों को बताती, "कौन नहीं जानता उसके घर बीसियों आते हैं बीसियों जाते हैं ।"

फिर भी लड़कियों बहुओं पर इन बातों का कुछ असर न होता । जब भी ढोलक लेकर बैठतीं तो चार चक्कर रमदेइया को बुलावा जाता । मुहल्ले में कितनी ही बहुएं आईं, बेटियां गईं, पर रमदेइया सबको आशीर्वाद देने हर जगह मौजूद रही । इसी क्रम में एक दिन रमदेइया की बिट्टी भी इसी मुहल्ले में बहू बनकर आई । जाते जाते रमदेइया, बहू बनी बिट्टी को देखने न गई । न जाने कौन सी हिचक थी, पर एक वजह तो यह थी कि उसी दिन उसके कमरे के कोने में बिल्ली अपना एक बच्चा डाल गई थी । वह उसी बिल्ली के बच्चे की देखभाल में लगी रही ।

फिर क्या था, रमदेइया भली और उसकी बिल्ली भली । दुनिया जहान को भूल गई रमदेइया । कोई बिल्ली को बिल्ली कह दे तो रमदेइया का मुंह फूल जाता । उसने अपनी बिल्ली का नाम मुन्नी रक्खा है । तो सबको मुन्नी कहना चाहिए । भले ही मुन्नी की अम्मा चिढ़ती हो तो चिढ़ा करे । वह अपनी लड़की का नाम मुन्नी रख सकती है तो रमदेइया अपनी बिल्ली को मुन्नी क्यों नहीं कह सकती ?

अब वह कहीं जाती तो बिल्ली को गोद में लेकर जाती । साथिनें व्यंग करती "रमदेइया, भगवान ने तेरी साध पूरी कर दी । अब इसका मूंडन, छेदन भी कराओगी या नहीं ?" रमदेइया बिना विचलित हुए कहती "वह दिन भी दिखाएगा भगवान ।"

सुबह उठकर बिल्ली को नहलाती, दूध पिलाती फिर दरी बुनने बैठती तो पास बैठी बिल्ली से बातें करती रहती । भैंस दुह कर उठती तो मुन्नी दूध के बर्तन में मुंह डालने को होती । रमदेइया कभी कहती "हाँ हाँ, तुझे कितना

सिखाऊं मुन्नी? सऊर तो तू सीखती ही नहीं । सारा दूध जूठा करेगी क्या ?"

कोई पड़ोसन ज़रा देर को मिलने आती, तो रमदेइया अपना चर्खा शुरु कर देती "मुन्नी बड़ी देर की गई है, न जाने कब लौटेगी । बड़ी सैतान है गई है । मरी घर में न रहे तो घर सूना लगता है ।" साथिनें व्यंग बाण छोड़तीं। लड़कियां और कम उम्र की बहुएं हंसतीं पर बड़ी बूढ़ियों के आग लग जाती, उन्हें रमदेइया के ये 'चोंचले' ज़रा न सुहाते । जल कर कहती, "लुगाई है कि तमासा, जो बात देखो निराली । ये कोई भले घर की औरतों के लच्छन हैं ?"

यह निराली लुगाई दिन भर की थकी मांदी जब अपनी मुन्नी को लेकर बिस्तर पर लेटती तो ठंडी सांस लेकर कहती "भगवान की माया है मुन्नी, निगोड़ी एक दिन रास्ता काट गई थी, आज जिन्दगानी का सहारा बनी है तू नहीं जानती बेटा मैंने बड़े दुख झेले हैं । अपनी कोख में आग लगाई फिर भी मक्खन धोखा दे गया । अब तू मत धोखा दीजियो मुन्नी ।"

रमदेइया कितना भी कहती पर मुन्नी को एक दिन धोखा देना ही था सो दे गई । उसकी बीमारी में रमदेइया पागल की तरह दौड़ती फिरी । उसकी झाड़ फूंक कुछ भी काम न आई । पड़ोसिनें धोती के पल्ले में हंसी छिपाती बीमार मुन्नी को देखने आईं और चली गईं । एक मनहूस सांझ को रंदेइया की मर्म भेदी चीखें सुनाई दीं, "अरी तू कहां चली गई री । हाय बेटा तू धोका दे के गई री मुनियां ।"

पहले तो लड़कियां रमदेइया का रोना सुनकर हंसती रहीं, फिर उनके भी आंसू आ गये । बहुत सी औरतों को अपने खोए बच्चे याद आ गये बुढ़ियां समझाते समझाते हार गईं पर रमदेइया का रोना बन्द न हुआ ।

भगवान जाने वह अपनी मुन्नी के लिए ज़ार ज़ार रो रही थी या जिस रुदन को वर्षों से अन्तर में छिपाए थी उसे निकलने का मौक़ा मिल गया था । दुर्भाग्य से जूझने वाली रमदेइया रो रो कर कह रही थी "मैं बड़ी अभागिन री।"

औरतों ने रमदेइया को सम्हाला और बिल्ली उठवाई । हार कर रमदेइया भी चुप हो गई, आख़िर क्या करे । पर तीन दिन तक किसी ने रमदेइया की बोली न सुनी । एक दिन देखा, चूल्हे में राख पड़ी थी । दूध लेने वाले आ आ कर लौट गए थे । भैंस बिन दुही बंधी थी । कमरे में एक बड़ी सी दरी के ताने बाने उलझे पड़े थे । गहरे लाल और नीले रंग का सूत सूख रहा था । आंगन के दोनों किवाड़ खुले पड़े थे । घर की एक एक वस्तु दम साधे उसकी प्रतीक्षा में व्याकुल थी, पर वह कहीं चली गई थी ।

बेचारी कौन ?

"मुझे अगर तुक का राज़ पता होता तो शायर हो गया होता। पर ऐसा नहीं हुआ, भगवान की कृपा या अकृपा से । पर इतना जानता हूं होली ही नहीं, यह जिन्दगी भी होली की भावना से जीने में ही मजा है । जिसने ज़िन्दगी को जीना नहीं जाना वह बेचारा ही तो है ।"

ससुराल में होली की लम्बी चौड़ी तैयारी देखकर मेरे मुंह से निकला "मुझे तो होली जरा भी अच्छी नहीं लगती" मेरी टिप्पणी पर न तो मेरे पति प्रकाश ही कुछ बोले न छुटकी ननद रीना । दोनों चुप ।

मैंने बात आगे बढ़ाई 'यह भी कोई बात हुई, पहले लाल काले, गाढ़े रंगों से मुंह पुतवा लो, फिर घंटों बैठकर छुड़ाओ । है न हद दर्जे की बेवकूफ़ी?'

प्रकाश तिरछी नजर से मुझे देखते हुए बोले "यहां तो सब भई बेवकूफ़ ही बसते हैं ।"

"यह तो बात को टालने वाली बात हुई । मुझे यह बताइये कि इस जंगलीपन में तुक क्या है ?"

"मुझे अगर तुक का राज़ पता होता तो शायर हो गया होता । पर ऐसा नहीं हुआ, भगवान की कृपा या अकृपा से । पर इतना जानता हूं होली ही नहीं, यह जिन्दगी भी होली की भावना से जीने में ही मजा है । जिसने ज़िन्दगी को जीना नहीं जाना वह बेचारा ही तो है ।"

रीना ने बात को गम्भीरता की ओर जाते देखा तो बोली "एक दो साल हमारे घर की होली खेल लेंगी तो यह सब बातें भूल जायेंगी । छोटे दादा, विजय, विनय सब ऐसी अनूठी होली खेलते हैं हर बार, कि पूछिए नहीं ।"

प्रकाश ने बात बीच में काटी, "कल दीदी और मि. टेन्स, आ रहे हैं, तब निशा और मि. टेन्स की होली जमेगी है न रीना ।" प्रकाश ने मेरी ओर देखकर फिर रीना की ओर इशारा किया और दोनों हंस पड़े । मुझे प्रकाश की हरकत ज़रा भी पसन्द न आई सिर्फ इतना ही पूछा "श्रीकान्त जीजा जी का इतना अच्छा नाम है उन्हें मि. टेन्स क्यों कहते हैं आप?"

"ये प्रकाश भैया किसी को नहीं छोड़ते । बात यह है भाभी कि जीजाजी मन के अनुकूल बात या वातावरण न होने पर तनाव ग्रस्त हो जाते हैं इसलिए सबने उनका नाम मि. टेन्स रख दिया । जल्दी टेन्स हो जाते हैं या कहिए टेन्स ही रहते हैं ।"

प्रकाश ने भरपूर नजर मेरी ओर देखा फिर बहन से बोले "हो जाता है । कुछ लोग होली को लेकर ही टेन्स हैं ।" और हंस पड़े । बहन के साथ इतनी अंतरंगता और मेरी उपेक्षा देखकर मैं जलभुन गई, पर क्या कहूं, शादी के बाद पहली बार ससुराल आई हूं । न तो इस घर के रंग-ढंग ही जानती हूं न लोगों के तेवर । घर का माहौल लोगों के मिज़ाज सभी मेरे घर से बिलकुल अलग । अपने घर में बस तीन ही लोगों का परिवार है मैं, मम्मी और पापा । अपने घर में हर बात का केन्द्र बिन्दु हमेशा मैं ही रहती हूं जो मुझे पसन्द मम्मी पापा को पसन्द । जो मुझे ना पसन्द वह घर में क़तई कोई पसन्द कर ही नहीं सकता।

एक यह घर है, चार देवर, जेठ, एक अदद जिठानी दो ननदें, एक शादीशुदा है सो उनके साथ पति भी हैं जिन्हें ये लोग मि. टेन्स के नाम से पुकारते हैं । भगवान जाने मुझे कौन सा बद् नाम देंगे । इस लम्बे चौड़े परिवार को तो टब्बर कहना ही ठीक होगा । ऊपर से तुर्रा यह कि सबकी अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग । सब गाए जा रहे हैं कोई किसी को सुने या न सुने।

कल होली है । रात के ग्यारह बज रहे हैं पर घर का माहौल ऐसा बना हुआ है जैसे कल घर में शादी हो । अपनी-अपनी तैयारियों में लगे हैं चुपचाप । मेरे कान में भनक पड़ी "भैया यह गुलाब-जल की बोतल मुझे दे दो। भाभी के ऊपर सबसे पहले डालूंगी । वे अभिजातवर्गीय होली पसन्द करती हैं न ।"

"हां हां हम भी देखेंगे कि कैसी होती है अभिजातवर्गीय होली ।"

सासजी चिल्लाकर आदेश दे रहीं थी "रंग से खराब होने वाली चीज़ें अन्दर कमरे में रक्खो, कल तो किसी को होश ही नहीं रहेगा । ख़बरदार जो किसी ने पानी की टंकी में रंग घोला । टेसू के फूल उबाले हैं बड़ी बड़ी बाल्टियां रंग से बना लेना । टंकी में घोलते हो तो टंकी का रंग ही नहीं उतरता महीनों।"

अरे बाप रे इस आधे कमरे के बराबर टंकी में रंग घोला जाता है इस घर में ? कहीं जगह होती तो भाग जाती एक दिन के लिए । काश पापा ही आकर ले जायें !

सास जी की फिर आवाज आई "तुम इस वक्त क्या कशीदाकारी कर रही हो बड़ी बहू ? सारे पकवान तलने को पड़े हैं ।"

"बस, बस हो गया । कल छोटे भइया का कुरता देखेंगी तो खुश हो जायेंगी ।" जिठानी ने जल्दी-जल्दी सुई धागा समेटा ।

रात के ग्यारह बज चुके हैं । मेरी आंखें नींद से झुकी जा रहीं हैं । हमारे घर में तो ठीक साढ़े दस सब लोग सो जाते हैं होली हो चाहे दिवाली । पर इनके घर तो सबके सब दीवाने हैं 'दिन को होली रात दिवाली' रोज़ मनाते हैं किसी तरह सोए तो ठीक चार बजे की गाड़ी से बड़ी ननद भी आ गई अपने पति के साथ । उठना पड़ा ।

दिन निकलते ही लोगों ने रंग खेलने वाले पुराने कपड़े पहन लिए और उन्हीं कपड़ों में नाश्ता करने बैठे । प्रकाश मुझे देखकर बोले "निशा तुम भी कपड़े बदल लो होली खेलने के लिए ।"

"मुझे होली खेलनी ही नहीं है । कपड़े बदलकर क्या होगा ?" छोटा देवर शरद बोला "फिर रोइयेगा नहीं कि इतनी बढ़िया साड़ी खराब कर दी ।"

"उसके पास क्या साड़ियों की कमी है जो रोएगी ?" पहले तुम इधर आओ । जिठानी जी ने शरद का हाथ पकड़कर बड़ी आत्मीयता से पास खींचा जो कुरता पहने था उतारा और जो कुरता खुद रात में तैयार किया था दुलार से पहना दिया । शरद कुरता सामने से देख रहे थे और हम लोग पीछे से । भाभी ने कुरते पर लाल हरे रंग से कशीदाकारी की थी । कुरते पर लिखा था "यह लड़का हमेशा लड़कियों के पीछे भागता है ।"

हमेशा टेन्स रहने वाले जीजा जी भी हंस पड़े । सबके साथ मुझे भी हंसी आ गई । भाभी ने यही लिखने के लिए इतनी मेहनत की थी ? इधर शरद है कि लोगों की हंसी पर हैरान है "भई मुझे भी तो बताओ कि क्या लिखा है?"

तब तक कमरे से ससुर जी बाहर आए। सास जी से बोले "देखो यह कुरता ठीक है ?" सास जी ने उनकी पीठ घुमाई और एक आलू का ठप्पा लगा दिया । लिखा था "लबारी ।"

अब क्या सब के सब होली के रंग में आ गए । नाश्ते की टेबल पर सिर्फ मैं और जीजा जी रह गए । हम लोगों को होली खेलनी ही न थी । बस सगुन के लिए अबीर लगा दिया था । और बैठे बातें कर रहे थे ।

बाक़ी सारा परिवार छत पर चला गया । थोड़ी देर बाद रीना की आवाज़ आई "छोटी भाभी, जीजा जी दोनों ऊपर आइए और देखिए तो ऊपर

वाले कमरे में क्या है ?"

जीजा जी ने कहा, "देखिए जरूर कुछ न कुछ शरारत होगी पर चलो चलकर देखते हैं"। हम दोनों छत पर पहुंचे, आगे आगे जीजा जी, पीछे पीछे मैं, दोनों कमरे की तरफ लपके । हमारे पीछे पीछे थी देवर, नन्द और जिठानी की बारात ।

दीदी आगे आकर जीजा जी से बोलीं "आप कमरा खोलिए और अन्दर जाकर देखिए तो क्या है ?"

जीजा जी ने कमरा खोला और अनायास ही उत्सुकतावश मैं भी उन्हीं के पीछे कमरे में चली गई । पलक झपकने की देर थी कि कमरा बाहर से बन्द हो गया ।

कुछ देर तो हम दोनों हक्के-बक्के खड़े रहे, फिर चारों तरफ नज़र दौड़ाई, कमरे में जमीन पर अबीर और फूल बिखरे पड़े थे । पूरा कमरा सामान से खाली था सिर्फ सामने की दीवार पर एक लम्बा चौड़ा कागज़ चिपका था । लिखा था :-

१ - आप दोनों होली नहीं खेलना चाहते थे, इसलिए आपको एक कमरे में बन्द कर दिया गया है, यहां आप होली के दीवानों से सुरक्षित रहेंगे ।

२ - कमरे की तीनों खिड़कियां बन्द न करें । पूरी खुली रखें । बन्द करने की इजाज़त नहीं है ।

३ - याद रखिए यह 'सुहाग दिन' है रात नहीं ।

यह सब पढ़कर मैं लाल हो गई । नई बहू की लाज शरम छोड़कर बोली "दरवाज़ा खोलिए यह सब क्या बद्तमीज़ी है ?" इतना कहना था कि खिड़कियों पर तैनात सैनिकों ने अपनी अपनी पिचकारी की बन्दूकें दाग़ना शुरु कर दीं । तरह तरह के रंगों की मार उन्हीं दोनों पर पड़ रही थी जिन्हें होली का त्योहार पसन्द नहीं था । शरारती रीना मटक मटक कर कह रही थी भाभी आप वह गाना गाइए "हम दोनों कमरे में बन्द हों, और चाबी खो जाए ।"

अब तक हम दोनों रंग से शराबोर हो गए थे । मुझे अपनी हालत पर रोना आ रहा था । विवशता, दुःख और अपमान से मैं जली जा रही थी । इतने में प्रकाश सब भाई बहनों को चीरते हुए, दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ गए और मुझे अपनी बाहों में उठा लिया । प्रकाश मुझे उठाए जल्दी-जल्दी ज़ीना उतरते कहते जा रहे थे "सीधी समझकर मेरी प्यारी बेग़म को इस तरह परेशान करते हो तुम लोग ।" हमारे पीछे बेशुमार तालियां बज रहीं थी, प्रकाश एक

फ़िल्मी हीरो के अन्दाज़ में मुझे फूल की तरह हाथों में उठाए हुए थे । मैं लाज के मारे मरी जा रही थी मैंने अपना मुंह प्रकाश के सीने में छिपा लिया था ।

ओफ़्फ़ो ! कितने नटखट हैं मेरे पति, इन्होंने नीचे आकर मुझे पानी की टंकी में खड़ा कर दिया और खुद भी उसी टंकी में कूद गए ।

न जाने मुझे क्या हुआ कि सारा विषाद भूलकर मैं दोनों हाथों से प्रकाश के ऊपर पानी उलीचने लगी । प्रकाश निहाल हो गए सारा घर पानी की टंकी को घेरकर खड़ा हो गया । मैं सबके ऊपर पानी उलीचने लगी । और जीजा जी ? उन पर तो सबसे ज्यादा पानी फेंका । एक क्षण के लिए मैंने होश खो दिया, मुझे लगा अंतरंगता की एक बड़ी सी लहर आई है जिसने हम सबको लपेट लिया है, स्नेह रस की धारा में हम सब डूबने उतराने लगे । खुलेपन का अहसास कैसा होता है मैंने आज ही जाना था । मेरे मन का पंछी खुले आकाश में विचरण कर रहा हो जैसे । खीजने खिजाने में भी रस है ? यह रस तो आज ही चखा है । मन हुआ जीजा जी को भी खिजाऊं, और मैंने उन पर भी जी भर पानी उलीचा । मेरे भीतर का सोया नटखट बालक जाग उठा था ।

मेरी सास ने हाथ पकड़कर मुझे टंकी से बाहर निकाला "दुष्टों ने परेशान कर दिया बेचारी को ।"

हां सच ही कुछ क्षणों पहले तक मैं बेचारी ही तो थी । जिसे जीवन का रस लेना न आए वह बेचारा ही तो है । पर अब ? भगवान भला करे मेरे देवर, नन्दों और जिठानी का उनकी झोलियां हमेशा खुशियों से भरी रहें, उन्होंने मुझे होली खेलना ही नहीं, होली की भावना से जीवन जीना भी सिखा दिया ।

●●●

मूल्यांकन

कैसी अभागिन थीं मां जी ! सारा जीवन ही असुरक्षा की भावना में कटा । एक असुरक्षित व्यक्तित्व स्वार्थ और नाटकीयता भरा व्यवहार करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ? करुणा को तो हैरानी होती है कि जब मां जी ज़िन्दा थीं, तब वह उनके बारे में इस तरह क्यों नहीं सोच पाई ? क्यों नहीं किया तब यह सब विश्लेषण। अगर तब इस तरह सोच पाती तो उसका व्यवहार उनके प्रति दूसरा होता । शायद घर में तब न्याय, सहजता और स्निग्धता का बोध होता और आज करुणा पछतावे की उधेड़बुन में न लगी होती ।

अगर कोई दूसरा आकर करुणा को बताता कि उसकी सास का देहान्त हो गया है तो वह हरगिज़ विश्वास न करती । पर इस वक़्त तो वह अपनी आंखों से देख रही थी, धीरे धीरे घुलती बर्फ के ऊपर, फूलों से ढकी, उसकी मृत सास निश्चेष्ट पड़ी हुई है ।

लोबान और अगरबत्ती की मिली जुली गंध से उसका सिर चकरा रहा था । न तो वह सास के मरने का ग़म जता रही थी और न ही उसके अन्तरतम में कोई ख़ुशी छिपी थी । करुणा सिर्फ एक ही बात से परेशान थी, कि इतने लोग जो ग़मी में आये हैं, बाद में अपने अपने घर जाकर कहेंगे कि करुणा ने अपनी सास के मरने पर एक बूंद आंसू नहीं बहाया । इस कहने सुनने की परवाह ने उसे हमेशा परेशान किया और सहज होने से रोका है ।

लोगों की आलोचना का डर ही उसकी आंखों में आंसू आने से रोक रहा था । वरना वह इतनी हृदयहीन नहीं । जाने वाले का ग़म और आने वाले की ख़ुशी उसे हमेशा होती रही है । शायद सास के सन्दर्भ में उसकी सोच कुछ दूसरी ही रही थी ।

यूं तो जब सास ज़ीती जागती सामने थी तो सोते जागते उठते बैठते सदा उसने सास की मौत का आह्वान किया था पर यह सारे आह्वान इस विश्वास के साथ करती थी कि वे कभी मरने वाली नहीं है, "भला मरेगी ? यह तो हमारी अर्थी उठाकर मरेगी ।"

आज याद आता है तो करुणा को हंसी आती है । छोटी बहन शैला की सास के मरने पर करुणा परिहास कर उठी थी । "तू तो बड़ी उस्ताद निकली शैला । एक साल में ही छुट्टी कर दी सास की । एक हम हैं दसियों साल से सासूजी को झेल रहे हैं और न जाने कब तक झेलना होगा।" चारों बहनों ने वह कहकहा लगाया कि करुणा का सोता हुआ बेटा जाग पड़ा था ।

पर यह सब तो पुरानी बात है । आज सुबह की बात को ही याद करती है करुणा । अभी छः ही बजा होगा कि मांजी की आवाज़ सुनाई दी। "रश्मि ! ओ बेटा रश्मि !"

घोड़े बेच कर सोने वाली रश्मि भला दादी जी की आवाज़ सुनकर जागने वाली थी ? वह मांजी हैं जो पोती के बहाने बहू को ही उठा रही हैं । उनकी नीति है कि बहू को सीख देने के लिए नौकरानी को डांटो ।

पर करुणा भी उठने वाली नहीं । आज छुट्टी का दिन है, श्रीकांत टूर पर गए हैं । क्या जल्दी है उठने की ? करुणा ने सुनी अनसुनी करके रज़ाई में मुंह ढक लिया ।

करुणा ने लाख सोने की कोशिश की पर मांजी के लगातार खांसने की आवाज़ ने सोने न दिया । वे धीरे धीरे ही खांस रही थी पर अजीब तरह से उखड़ी उखड़ी खांसी आ रही थी । या भगवान जाने करुणा को उठाने के लिए खांस रही थीं । भला इस तरह भी किसी को खांसी आती है ? ठीक है! खांसती रहिये मैं भी उठने वाली नहीं हूं ।

मांजी की फिर आवाज़ आयी," बिटिया रश्मि अब तो आओ बेटा । अब जाने का वक्त आ गया है"।

सुन कर करुणा को गुस्सा भी आया और हंसी भी । मन में सोचा आप ज़रूर जायेंगी । ऐसे नाटक बहुत बार देखे हैं न जाना न आना । कितना अच्छा है कि श्रीकांत टूर पर गए हैं । वरना मुझे ज़बरदस्ती उठाते, देखो तो प्लीज़, मम्मी कुछ कह रही हैं । और मुझे उठना ही पड़ता । और अगर करुणा के मुंह से निकल जाता, "मम्मी को तो कुछ न कुछ कहना ही है, कहाँ तक सुनूं।" मुंह से निकला नहीं कि दोनों में ठन जाती ।

मांजी की फिर आवाज़ आयी पर बड़ी अटपटी जैसे ज़बान लड़खड़ा रही हो "क...रु...णा ।" यह कैसी आवाज़ है । करुणा को जैसे करंट लग गया हो । रज़ाई फेंककर सास के कमरे में पहुंची तो देखा उन्होंने आँखें पलट दीं ।

सारे घर में हड़कम्प मच गया । करुणा बौखला गई । चिल्ला चिल्ला कर पड़ोसियों को बुलाने लगी । बच्चे ज़ोर ज़ोर से रोने लगे और डॉक्टर के आने से पहले ही मां जी ने दम तोड़ दिया ।

करुणा हक्की बक्की रह गई । यह कैसा नाटक था, जो सच हो गया । वरना अब तक तो यही होता आया था, कि बेटे का सान्निध्य पाने, उसकी सहानुभूति बटोरने के लिए ही मां जी की तबीयत खराब हुआ करती थी । डॉक्टर की फीस चुकाई जाती । बेटा समझाता बुझाता, मन मनुहार करता, और मां जी ठीक हो जातीं । करुणा को क्या मालूम था, कि आज का नाटक एक नाटक नहीं, एक कड़वी सच्चाई था ।

इस सच्चाई ने सास के प्रति करुणा की मानसिकता को ही बदल कर रख दिया था । जिन सहेलियों के बीच बैठकर करुणा सास की बात तक करना पसंद न करती थी, उन्हीं के बीच वह अनायास ही कह उठती, "मैं यह नहीं कहती कि मेरी सास अच्छी थी या बुरी, पर मुझे उनकी याद आती है ।"

हां, अब उसे हर प्रसंग में याद आती । करुणा ने सोचा था - मैं अकेली बहू हूं, अन्त समय में तो मां जी को मेरे ऊपर निर्भर रहना ही होगा, बिना भोगे तो कोई मरता नहीं । तब देखूंगी इनकी अकड़ । पर वे तो सचमुच ही अकड़ दिखाकर चली गईं । जैसे करुणा को अंगूठा दिखाकर चिढ़ा रही हों ।

करुणा रसोई में काम करती और चलता रहता मन में तर्क वितर्क । ऐसी ऐसी भूली बिसरी बातें याद आतीं, कि करुणा का मन गहन अपराध-बोध से भर जाता । सोचती १५ साल साथ साथ रहे, पर न जाने कैसे ग्रह नक्षत्र थे कि तालमेल ही न बैठा । जो भी रहा, लोकाचार के डर से रहा । ऊपरी मन से हंस बोल भी लेते, चार मेहमानों के बीच बैठकर अच्छा दिखावा भी कर लेते । पर अन्दर ही अन्दर एक लड़ाई चलती रहती । एक दूसरे को छोटा बनाने की लड़ाई ! एक दूसरे के पैर के ऊपर पैर रखकर खड़ा होने की लड़ाई !

करुणा भाई की शादी में मैके जा रही थी । चाहती थी मां जी अपना सतलड़ा हार और जड़ाऊ कंगन उसे दे दें । पर उन्होंने नहीं दिए । करुणा ने उड़ती उड़ती बात चलाई तो मां जी चुप्पी साध गईं ।

ट्रेन में करुणा और श्रीकांत का खूब झगड़ा हुआ ।

श्रीकान्त कहता, "उनकी चीज़, जिसे चाहे दें या न दें । अगर वह किसी और को देना चाहें तो क्या तुम रोक लोगी ? और फिर अगर तुम्हें चाहिए था तो मांग लेतीं । मुंह खोलकर मांग लेतीं तो क्या छोटी हो जातीं ।"

"हां, हो जाती छोटी । मुझे क्या ज़रूरत पड़ी है किसी से मांगने की। मेरे मां बाप ने बहुत दिया है ।"

"फिर रोना काहे का है ?" श्रीकान्त खीजता ।

"तुम्हारी इज़्ज़त का ।"

"उसकी तुम परवाह न करो । मैं अपनी इज़्ज़त खुद बनाना जानता हूं । तुम्हारा मोहताज नहीं ।"

बस इसी तरह जब भी श्रीकान्त मां की तरफ़दारी करता, करुणा का मन सास के प्रति और भी कड़वाहट से भर जाता । करुणा का मन उन्हें किसी तरह भी अपने छोटे से परिवार की सदस्या मानने को तैयार न होता । सास के प्रति दूरी, अलगाव और उपेक्षा का भाव अपनाकर ही करुणा को शान्ति मिलती ।

आज करुणा को याद आता है कि, बोझिलता, बेगानापन और चुप्पी को तोड़ने की पहल हमेशा मां जी ही करती थीं । कभी अपना प्यार जताकर वातावरण हल्का करतीं तो कभी आभार प्रकट करके करुणा का मन जीतना चाहतीं । पर दूसरी तरफ करुणा थी, जिसे हमेशा मां जी के व्यवहार में निपट स्वार्थ की गंध आती । प्यार-दुलार एक दिखावा लगता । सारी तारीफ़ें बनावट लगतीं । मन में कहती, 'यह सब नाटक तुम बेटे को दिखाने के लिए रच रही हो । मैं सब जानती हूं । खूब समझती हूं आपको, मां जी ।'

अपनी सहेलियों, और पति के मित्रों के बीच वह एक मधुर स्वभाव वाली, मिलनसार और व्यवहार कुशल गृहणी मानी जाती हैं । पुरुष मित्र तो उसकी बोली की मिठास पर बलि बलि जाते हैं । श्रीकान्त भी उसके इन गुणों पर मुग्ध हैं । पर वही करुणा मां जी के प्रति कितनी रूखी और कठोर हो जाती थी, आज इस बात पर उसे खुद ही आश्चर्य होता है । कभी कभी श्रीकान्त भी कहता था, "तुम मां के प्रति बहुधा इतनी सहानुभूति-विहीन कैसे हो जाती हो? मैं खुद हैरान होता हूं, तुम्हारा यह पक्ष देख कर ।"

आज सोचती है करुणा, सच ही मैं मां जी के प्रति कभी न्याय नहीं कर पाई । एक तरह का डर, अनजाना भय उनकी ओर से मुझे हमेशा सताता

रहा। कभी लगता, वह श्रीकान्त को मुझसे विलग कर देंगी, मेरे विरुद्ध उनके मन में जहर भर देंगी। जब भी उन दोनों में लड़ाई होती, करुणा को लगता, यह लड़ाइ मां जी की करवाई हुई है। वही हैं जो कोई न कोई चिनगारी लगा देती हैं। श्रीकांत लाख समझाता, "मैं उन्हें बात करने का मौका ही कहां देता हूं, जो बुराई करेंगी।" पर करुणा को तो उनसे सब कुछ छीने जाने का भय खाए जाता। जब भी मां जी बच्चों को प्यार करतीं, कहानी सुनातीं, कुछ देतीं, तो करुणा को लगता कि वे बच्चों के प्रति अतिरिक्त प्यार दिखाकर बच्चों को मां से दूर करने का षड्यंत्र रच रही हैं। इसी तरह के जाने अनजाने डर, करुणा को चैन से जीने न देते थे। यही कारण है कि वह मां जी को कभी उनके सही परिप्रेक्ष्य में देख ही न पाई।

आज उनके प्रति मन दया से द्रवित हो उठता है। मां जी ने कभी सुख नहीं पाया। मां बाप बचपन में मर गए थे। चाचा चाची ने उम्र के तिगुने आदमी से विवाह कर दिया। अभी २६ वर्ष की भी न हुई थीं कि एक बेटे को लेकर विधवा हो गईं।

ऐसी औरत की सारी आशाओं, सारी आकांक्षाओं का केन्द्र बिन्दु उसका एक मात्र बेटा ही तो होगा। उनका है ही कौन दुनिया में! क्या सुख पाया था उन्होंने इस दुनिया से, जो दूसरों को देतीं ? जो मिला, वही तो बांट सकती थीं!

कैसी अभागिन थीं मां जी! सारा जीवन ही असुरक्षा की भावना में कटा। एक असुरक्षित व्यक्तित्व स्वार्थ और नाटकीयता भरा व्यवहार करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है!

करुणा को तो हैरानी होती है कि जब मां जी ज़िन्दा थीं, तब वह उनके बारे में इस तरह क्यों नहीं सोच पाई ? क्यों नहीं किया तब यह सब विश्लेषण। अगर तब इस तरह सोच पाती तो उसका व्यवहार उनके प्रति दूसरा होता। शायद घर में तब न्याय, सहजता और स्निग्धता का बोध होता और आज करुणा पछतावे की उधेड़बुन में न लगी होती। यह सच है कि करुणा को आज कोई भी दोषी नहीं ठहराता, न पति, न बच्चे, न समाज। पर उसका अपना मन है, जो कचोटता रहता है।

वही सतलड़ा हार और कंगन जिन पर करुणा जान देती थी, आज उन गहनों की स्वामिनी है। मां जी की हर चीज़ उसकी है। पर वह मन में एक तीखी टीस महसूस किए बिना कुछ भी पहन ओढ़ नहीं पाती।

दूसरी ओर श्रीकांत हैं, मां जी के प्रति हर कर्तव्य को पूरा करने की

भावना से तुष्ट। यहां तक कि जाने से भी संतुष्ट। जब याद आती तो कभी भीगे स्वर में कहते, "बड़े ठीक वक़्त पर चली गईं मां। बड़े आदर से गईं।" न मन में कोई द्वन्द्व, न पछतावा। कभी याद आई तो भावसुमन अर्पित कर दिए और बस। इधर करुणा है। क्यों और कैसे के द्वन्द्व में ही लगी रहती है सदा। अपने को बरी करने-कराने की जद्दो-जहद में व्यस्त!

मां जी और करुणा के बीच में श्रीकान्त को लेकर हमेशा एक तनाव बना रहता। दोनों उसे अपना, केवल अपना बनाने में और कभी सिद्ध करने में लगी रहतीं। मां जी सोचतीं, श्रीकांत को क्या अच्छा लगता है, क्या बुरा, क्या खाना पसन्द करता है, क्या नहीं, वे करुणा से ज़्यादा जानती हैं। करुणा कहती मां जी ने तो अपने बेटे को कभी जाना ही नहीं। समझा ही नहीं। उसके दिल की गहराइयों में उतरने की सामर्थ्य तो करुणा के ही पास है। श्रीकान्त कभी पत्नी की ओर झुकता तो कभी मां की ओर। हां, अपने लिए मां और पत्नी के बीच कशमकश देखकर उसका पुरुष अहं कहीं बहुत गहरे तक संतुष्ट ज़रूर होता था।

आखिर श्रीकांत, करुणा को मिल ही गया। अब मां जी से किसी तरह का डर नहीं, न श्रीकान्त के छीने जाने का और न बच्चों को करुणा से दूर करने का। और भी न जाने कितने और कितनी तरह के डरों से करुणा को मुक्ति मिल गई थी।

डर से मुक्त होते ही, उसके अन्तर में छिपी संवेदनाओं का ज्वार भी मुक्त हो उठा था, इसीलिए करुणा अधिक उदार और अन्तरदर्शी हो उठी थी। करुणा सोचती, क्या हम केवल उन्हीं के प्रति संवेदनशील हो पाते हैं जिनसे हमें किसी तरह का डर नहीं होता। हां, शायद यह ठीक ही है और सभी मानवीय सम्बन्धों के बीच यह सत्य विराजमान है। जिससे किसी भी तरह से नुक़सान पहुंचने की आशंका है, उसके प्रति किसी भी प्रकार की कोमलता कैसे हो, और क्यों हो?

अब मां जी, सारे भय, सारी आशंकाएं अपने साथ लेकर चली गई हैं। लौटकर आने की कोई सम्भावना भी नहीं है। वे स्वर्ग में बैठी हैं और करुणा नर्क में। स्वर्ग में बैठी तो आशीर्वाद ही देंगी। तभी तो आज करुणा इतनी ममतामयी हो उठी है। उनके सही स्वरूप को जानने और मूल्यांकन करने में जुटी है!

●●●

चिता चूड़ियां और...

सादिक़ हैरान होकर सोचता, अरसा बीत गया, दुनिया बदल गई दुनिया का चलन बदल गया । सादिक़ के बाल सफ़ेद हो गए । बेटी ब्याह के लायक़ हो गई, सादिक़ का घर पक्का बन गया, पर भौजी की कलाई उसे वैसी ही लगती, जिसे वह घंटों निहारता था बचपन में। न जाने कौन सी इच्छा बलवती हो जाती । सादिक़ को उन्माद सा हो जाता, जी चाहता उस सुघड़ कलाई को अपनी मुट्ठी में मज़बूती से पकड़ ले ।

वैद्य जी की दूसरी दुल्हन जब ब्याह कर आई, तो सादिक़ छोटा ही था । आंगन में दरी पर बैठी गोल मटोल गुड़िया सी बहू का मुंह देखने के लिए। जब भी कोई औरत बहू का घूंघट उठाती, तो सादिक़ अपना सिर ज़मीन पर टिका देता । वह जी भरकर दुल्हन को निहारना चाहता, पर तब तक फिर घूंघट गिर जाता, बहू फिर घुटनों में सिर छिपा गठरी बन दूसरी औरत, जो आगे देखने आने वाली है, उसके इन्तज़ार में बैठी रहती ।

धीरे धीरे बहू भी नई से पुरानी हो चली, और सादिक़ की मां को, घर का, कूटने पीसने का काम करने के आदेश देने लगी । बेचारी बेवा सादिक़ की मां का सहारा वैद्य जी का घर ही तो था । दिन भर उन्हीं के घर बीनने, पछोरने के काम में लगी रहती और गाहे बगाहे वैद्य जी की दुल्हन से अपने मन की बात कह लेती, दुख सुख कहकर हल्की हो लेती । उसका एकलौता बेटा सादिक़, हर वक्त यही कोशिश करता कि वैद्य जी की दुल्हन, जिसे वह 'भौजी' कहकर बुलाता, उसी के इर्द गिर्द घूमता रहे । पर बुढ़िया सास को यह ज़रा भी पसन्द न था । हर बहाने से सादिक़ को डांटती कि वह भौजी से दूर रहे। "अभी उसे पूजा करनी है ।" या कभी कहती, "तू हर चीज़ को हाथ न लगाया कर सादिक़, यह भी कोई बात हुई, हर चीज़ छूता है ।" हर दो मिनट के बाद बुढ़िया की डांट सुनते हुए भी सादिक़ ज़रा भी विचलित न होता और भौजी को ताकते रहने का लोभ संवरण न कर पाता ।

बाल गोपाल की किलकारियों से सूने घर में सादिक़ का घूमना भौजी

को भला लगता । वह उसकी आंखों में झांक कर बच्चे के मन की भाषा पढ़ने का प्रयत्न करती । सादिक़ चुपचाप बैठा, भौजी की चूड़ियां निहारता रहता, गोरे गोरे हाथ, उंगलियां जिनमें नगों से जड़ी अंगूठी थी, भौजी की आंखें, सब कुछ इतना अच्छा लगता कि वह बता नहीं सकता, सिर्फ देखे जाता है ।

सादिक़ की मां ठिठोली करती, "क्या देखता है सादिक़ ? तू ब्याह करेगा भौजी से ?" सादिक गम्भीरता से सिर हिलाता और भोलेपन से सिर हिला कर मना करता । भौजी उसके भोलेपन पर रीझ जाती और बार बार कहती, "मैं तो सादिक़ से ही ब्याह करूंगी" पहले सादिक़ धीरे धीरे मना करता, फिर ज़ोर ज़ोर से कहता "नहीं ! नहीं ! मैं भौजी से ब्याह नहीं करूंगा ।" और अन्त में रोने लगता । वैद्य जी की बुढ़िया मां हंसते हंसते खांसने लगती, तो कहती, "बस कर, हो गई बहुत हंसी ।"

सादिक़ की मां गोरी चिट्टी जवान औरत थी । आखिर कब तक दूसरों के घर 'कूटना पीसना' करती । सब कुछ सोच समझ कर, उसने शहर के एक अच्छे आदमी से निकाह कर लिया । और घर का सामान समेट, बैलगाड़ी में लाद कर शहर चली गई ।

शहर जाने की खुशी में सादिक़, भौजी से मिलना भी भूल गया । सादिक़ की मां ने रास्ते में खाने के लिए पराठे और कबाब बनाए थे । सादिक़ का मन हो रहा था कि एक कबाब निकाल कर खा ले, पर वह आदमी, जिसके साथ वह लोग शहर जा रहे थे, सादिक़ को कबाब खाने से रोक रहा था, वह उससे इतना डरा हुआ था कि मां से भी नहीं मांग सकता था । 'ज़रा भी अच्छा आदमी नहीं है', सादिक़ ने सोचा, "अम्मा कहती है वह तेरा अब्बा है । आंखें बड़ी और मूंछे भी बड़ी ।" सादिक़ ने अपने हाथों से हवा में उसकी बड़ी बड़ी मूछों का चित्र बनाया कि देखा कि सादिक़ का अब्बा उसी को घूर रहा है । उसे अपनी और घूरते देख कर सादिक़ सहम गया । 'कसाई कहीं का' वह मन ही मन बुदबुदाया । उसने मां की ओर देखा, फिर यकायक उसे भौजी की याद आ गई, कहीं भौजी भी शहर चलती तो . . .। सादिक़ ने बाप की ओर देख कर उपेक्षा से मुंह फेर लिया । जैसे वह उस आदमी को बिलकुल महत्त्व नहीं देता है ।

पर सत्य इतनी आसानी से झुठलाया नहीं जा सकता । कुछ वर्षों तक तो भाग्य का मारा सादिक़, मां का प्यार और बाप की कठोरता के बीच हिचकोले खाता रहा । पर जैसे जैसे उसकी नसों में गरम ख़ून बढ़ता गया, मसें भीगने लगीं, बातें भी सादिक़ के दिल पर ज्यादा चोट करने लगीं । उसे लगता, मां अब दो छोटे भाइयों को ज्यादा प्यार करती है, और बाप तो उसे अपना गुलाम

ही समझता है । अगर ग़ुलामी करनी ही है तो किसी बड़े आदमी की करेगा । सादिक़ को गांव की याद आई । गांव में अपना घर है ग़नी काका है, सादिक़ अनाथ नहीं है जो इस ज़ालिम के तलवे चाटता रहे । मां तो ख़ैर ग़ैर हो ही गई है ।

सोने के पहले, बहुत कुछ सोचता सादिक़, "क्यों न गांव जाकर ज़मींदार का हल बैल थाम लूं ? काम भी करूंगा और इज़्ज़त की दो रोटी तो खाऊंगा। सब अपने ही हैं । ग़नी काका की लड़की है । कुछ पैसा कमा लूं तो साबरा से निकाह भी हो सकता है । पर यह हल बैल का काम है बुरा । क्यों न वैद्य जी के यहां दवा कूटने की नौकरी कर लूं ? कुछ दिनों में 'नाड़ी' भी देखने लगूंगा ।" एक से एक लुभावने सपने आ रहे थे ।

सादिक़ की कल्पना की आंखें सजग हो गईं । तरह तरह के गाढ़े चमकीले रंगों के बीच, पैसा, इज़्ज़त, निकाह, वैद्य की तरह सम्मान, जैसे चित्र, एक एक कर आते और सादिक़ को लुभा कर चले जाते । सादिक़ अपनी योजना के सभी पहलुओं पर ग़ौर करता रहा ।

आख़िर एक दिन ऐसा आया जब सादिक़ ने छलांग मार दी । दिन भर का हारा थका सादिक़, गांव के पास वाले आम के बग़ीचे तक पहुंचा, तो गांव की बरसाती नदी, खैरारी पूरे जोर से उमड़ रही थी । रास्ता बन्द था, पर जल्दी ही खुलने की आशा में वह किनारे पर खड़ा होकर प्रतीक्षा करने लगा ।

खैरारी नदी गांव के लिए उस देवता के समान थी, जो क्षण में प्रसन्न होकर सारे घर को सुख-समृद्धि से भर दे, और दूसरे ही क्षण क्रोध वश सारे वंश का विनाश कर दे । खैरारी बरसात को छोड़कर पूरे साल अपनी कंकरीली, बलुही मिट्टी म़ें, गांव वालों को मनमानी करने की छूट देती, बच्चे नदी के बीच में खेलते रहते । परदेसी आते और चले जाते, उन्हें इस बात का भान भी न होता कि एक ओर अति ऊंचे और एक ओर से नीचे कगारों के बीच, कोई नदी भी बहती होगी । पर बरसात में कभी कभी, खैरारी को विनाश लीला सूझती। क्षण में दुनिया बदल जाती । गांव के लोग चिल्ला-चिल्ला कर "खैरारी आवति ही, खैरारी आवति ही" की चेतावनी देते रहते, पर खैरारी न जाने कितने पशुओं को बहा ले जाती । बहुतों के कपड़े लत्ते बह जाते, कभी तो खेलते मासूम बच्चों का खेल समेट, घंटे दो घंटे में खैरारी शान्त हो जाती ।

सादिक़ वक्त काटने के लिए आम के पेड़ पर चढ़ गया । चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा था, पर नदी पार शमशान में जलती चिता की रोशनी थी । घी, धूप और चन्दन की सुगन्ध, हवा के साथ बह कर सादिक़ के पास आई ।

गांव में कोई मर गया है । चढ़ी हुई नदी, जलती चिता, सादिक़ का मन विराग से भर गया । कैसी बुरी घड़ी में वह अपने गांव लौटा है । उसका साहस छूटने लगा ।

नदी उतरी तो भारी क़दमों से ग़नी के घर चल दिया । साबरा ने दरवाज़ा खोला और पीछे हट गई । न जाने कौन नौजवान है । ग़नी आया । सादिक़ ने पता ठिकाना बताया तो ग़नी ने प्यार किया और भीतर ले गया । सादिक़ को देख कर ग़नी खुश था । "तेरी मां कैसी है ? यहां तो सब बदल गया । मेरे हाथ पैर थक गए, आंखों से कम सूझता है । तेरी काकी का इन्तक़ाल हो गया । तेरे बाप के घर की तो मिट्टी तक बह गई । और हां आज तो गांव के वैद्य जी मर गए ।"

वैद्य जी के मरने की बात सुन सादिक़ सन्न रह गया । कुछ बोला न गया । ग़नी और भी बहुत कुछ बताता रहा और फिर सो गया ।

पर सादिक़ की सोई स्मृतियां जाग उठीं । वह तो वैद्य जी के यहां नौकरी करने आया था । वैद्य जी की उसे याद नहीं, पर भौजी की उसे खूब याद है । बेचारी भौजी ! बेवा और हिन्दू । इतनी अच्छी भौजी । सादिक़ को लगा भौजी उससे दूर नहीं, निकट है । उसकी आत्मीय है । अपनी है । भौजी दुखी हो, परेशान हो, तो क्या सादिक़ बैठा रहेगा । वह उसके लिए कुछ न कुछ ज़रूर करेगा । शायद इसी लिए खुदा ने उसे यहां भेजा है ।

दूसरे ही दिन से सादिक़ भौजी को देखने के लिए छटपटाता रहा । पर अभागिनी की छाया के भी दर्शन न हुए । दसवें के दिन, जब बिरादरी की औरतें सादिक़ की भौजी का अंतिम श्रृंगार नदी में बहाने के लिए ले गईं तो निठल्ला सादिक़ दूर से खड़ा खड़ा सब देखता रहा । भौजी का सिन्दूर बहाया गया, चूड़ियां तोड़ी गयीं, तो भौजी बिलख बिलख कर रो रही थी । सादिक़ का कलेजा उमड़ाआ रहा था । वही चूड़ियां और चूड़ियों भरी कलाई जिसे बचपन में निहारते नहीं अघाता था । भौजी पछाड़ खा कर गिर पड़ी । सादिक़ रोने लगा । जी चाहा दौड़ कर भौजी को उठा ले और कहे "सादिक़ तो ज़िन्दा है भौजी ।" सादिक़ का किशोर मन आकुल व्याकुल था ।

रोती पीटती भौजी ने सास को धीरे से बताया "बाद में कोई मुझे दोष न दे, इसलिए कहती हूं मुझे कुछ दिन चढ़े हैं ।" भौजी की सास ने छाती पीट पीट कर कहा "मेरा बेटा बेटे का मुंह देखने को तरसते चला गया और अब मैं पोता खिलाऊंगी । सुन लो गांव के सब लोगों ।"

दुख का ज्वार भी थमना ही था । दुनिया के काम, किसी के आने

जाने से रुकते थोड़े ही हैं । मुनुआ का जन्म हुआ । भौजी ने बूढ़ी सास और ज़मीन जायदाद सब सम्हाल ली । वैद्य की बनाई गोलियां, चूरन, गांव वालों में बांटती, बुख़ार में काढ़ा देती और दूध घी बेच कर घर का खर्च चलाती ।

सादिक़ ने वैद्य जी की नौकरी भले ही न की हो, पर वह अपने गांव में जम गया । सादिक़ ईमानदार और मेहनती लड़का था । ग़नी ने उसे दिल से अपना लिया । सादिक़ ने ग़नी का हल बैल थाम लिया । ग़नी खेत पर नहीं जाता । घर में बैठा, तम्बाकू खा कर थूकता रहता है । सब ठीक चल रहा है उस दिन जब सादिक़ भौजी की भैंस का दूध दुह कर आंगन में रखने गया तो भौजी मनुआ को थपकी देकर सुला रही थी । सादिक़ को देखकर पूछने लगी "कैसे लौट आया सादिक़ ?"

"पुरखों की देहरी का मोह खींच लाया ।" बिना सोचे ही सादिक़ के मुंह से निकल गया । सादिक़ ने सिर उठा कर देखा भौजी अब घूंघट नहीं निकालती । जी चाहा उसकी और देखता रहे, पर भौजी से नज़र नहीं मिला सकता सादिक़, उसका तेज ही ऐसा है, आंखें नीची हो जाती हैं । ज़बान पर ताला पड़ जाता है, पर पीछे उस पर बड़ा तरस आता है ।

सादिक़ को नींद नहीं आ रही, शायद मच्छर काट रहे हैं । सोचता है मैंने सुख नहीं जाना, इतनी अच्छी मां कैसे दूर होती गई और फिर उससे नाता ही टूट गया हो जैसे । भौजी का ख्याल आता है, उसका चेहरा कैसा चमकता रहता है ।

भौजी को समझना सादिक़ की शक्ति के बाहर है । फिर भी न जाने क्यों बचपन से उसकी कल्पना का केन्द्र बिन्दु भौजी ही रही । नयनों की ज्योति उसे कुछ आश्वासन सा देती जान पड़ती, पर वह ज़्यादा देर तक उस ज्योति शिखा को निहार नहीं सकता । न जाने वह देव लोक की कोई अप्सरा है या तेजस्वनी देवी, जो न सादिक़ को पास आने देती और न दूर जाने देती । सादिक़ न कुछ समझता और समझना ही चाहता । बस वह तो ज़्यादा से ज़्यादा उसके काम आना चाहता है ।

भौजी का मुनुआ बीमार है, सादिक़ रोज़ दवा लेने शहर जाता है । मुनुआ को पीठ पर लादे पैदल ही जाता और पैदल ही लौटता । पीठ पर मुनुआ को लादे, लम्बे लम्बे डग भरता सादिक़ सोचता, भौजी का काम करने से ग़नी कुढ़ता है तो कुढ़े । सादिक़ को तो संतोष मिलता है । सादिक़ रात को भौजी की भैसों को सानी पानी करके, दूसरे दिन के लिए चारा काट कर, घर लौटता तो ग़नी गुस्से के मारे उससे बोलता तक न था। साबरा रोटी देती सादिक़ खा

पी कर थक कर पड़ा रहता ।

इस सब में ज़िन्दगी सुहानी लगने लगी थी । दिन भर काम करता, साबरा के साथ हंसी मज़ाक करता, उसे चिढ़ाता, ग़नी को खिजाता, मन ऐसा हल्का कि दिन मानों हवा में उड़े जा रहे हों । अब तो भौजी से भी बहुत बोलने लगा है, उसकी बातें सुन कर हंसती रहती, कभी कभी वह कहनी अनकहनी भी कह जाता । घर देर से लौटता तो साबरा का फूला मुंह देख कर उसे मुक्के से पिचकाने की बात कहकर उसे हंसाता और ग़नी की आंख बचा कर उसकी नकल उतारता, साबरा से हंसी रोके न रुकती ।

उसे लग रहा था ज़िन्दगी यूं ही बीत जायेगी । क्योंकि वह तो अपनी ही परिधि में घूमे जा रहा था ।

और इधर सारा माहौल, साम्प्रदायिक वैमनस्य की आग से झुलस रहा था । भौजी का अपने पट्टीदार देवर जेठों से बड़ा मन मुटाव चल रहा था । गांव के ज़मीदार रफ़ीक़ भैया, भौजी के हक़ में नहीं थे । वे उसके देवर जेठों के तरफ़दार थे । सादिक़ को कई बार चेतावनी दे चुके थे ।

"जानती हो भौजी रफ़ीक़ भैया क्या कह रहे थे ?"

"क्या ?" चावल बीनती भौजी ने लापरवाही से पूछा ।

"कहते हैं उनकी बात माननी होगी । गांव में उनका राज है ।"

"अच्छा गांव के राजा हैं ? रफ़ीक़ भैया । बेसहारा औरत के ख़िलाफ़ खड़े होने को बहुत बहादुरी का काम मानते हैं । मैं तो दुश्मनी मानती नहीं किसी से ।"

"तुम समझती नहीं भौजी । बात यह है . . . कि "

"कहता क्यों नहीं ?"

"कहते हैं कि सादिक़, अब भौजी का काम छोड़ । यह हिन्दू मुसलमान की यारी नहीं चलेगी । साले तू नहीं मानेगा तो, तुझे तो अच्छी तरह बदनाम करेंगे ही और तेरी भौजी को भी ।"

भौजी सकते में आ गई । कुछ क्षण मौन रह कर, शान्त और आदेश भरे स्वर में बोली, "तू जल्दी ही साबरा से निकाह कर ले सादिक़" । भौजी चुप हो गई । सादिक़ ने सर नीचा कर लिया । न जाने क्या था, भौजी के शब्दों में - देवी का आदेश ! ताड़ना । क्या सादिक़ को आगाह कर रही थी ? सादिक़ खड़ा सोचता रहा, भौजी भीतर चली गई ।

इधर उधर की बातें करके सादिक़, भौजी को हिला गया । उस दिन से उसका मन नहीं लग रहा था । पड़ोस में छठी का रतजगा था सो वह भी चली गई । रधिया ढोलक लेकर बैठी थी पर गाना जम न रहा था। गाना तो

साबरा की ऊंची आवाज़ में जमता है । साबरा आई तो रधिया ने ढोलक सरका दी । "ले अपना वही गीत गा तो" साबरा मुस्कुराई । उंगलियां ढोलक पर चोट करने लगीं । घर आंगन गूंज उठा । साबरा गा रही थी "गोरा है मुखड़ा अल्ला, काली हैं ज़ुल्फें, लाना ख़बरिया मेरे बांके पिया की ।"

मौजी दूर पिढ़िया पर बैठी थी । मुनुआ चुपचाप गाना सुन रहा था । साबरा गाए जा रही थी । साबरा का 'बांका पिया' । मौजी की आंखों के आगे सादिक़ की मूर्ति खड़ी हो गई । निश्चय ही वह बांका है । मौजी उसे पहचानती है । अपनी सोच पर वह सिहर उठी । दिमाग़ को झटका दिया । मुनुआ को गोद में उठाकर चूमने लगी । साबरा का बांका पिया मौजी को अशान्त कर गया । वह उठ कर चली आई । व्यग्र और उद्विग्न ।

घर आकर दिया जलाया । तुलसी के चौरे पर रक्खा आंखें बन्द कर बैठ गई । आंसू बह बह कर गालों पर ढुलक रहे थे । वह प्रार्थना कर रही थी "इज़्ज़त से पार लगाना महरानी । यह मन बड़ा पापी है । तुम तो सबके मन की जानती हो । मेरा छोटा सा बच्चा, यह पहाड़ सी ज़िन्दगी, इस गांव में कितनी लड़कियों की मति भ्रष्ट नहीं हुई । मैं तुम्हारी शरण में हूं देवी ।" इस असम्बद्ध प्रार्थना के साथ ही आत्म स्वीकृति से उसका मन हल्का हो गया था । वह अपना बक्स सम्हालने बैठी तो एक अच्छी साड़ी और पाज़ेब साबरा के निमित्त रख दी।

मौजी की इच्छा जल्द ही पूरी हुई, साबरा और सादिक़ का निकाह हो गया । सादिक़ अपने खेतों में जी जान से मेहनत करता, गांव वाले कहते सोना बरसने लगा है ग़नी के खेतों में । मौजी सोचती, कैसा रूप चढ़ा है साबरा पर। सादिक़ का सोना और साबरा का रूप । सलोनी गृहस्थी ।

आजकल साबरा क़रीब क़रीब रोज़ ही आती है । सादिक़ भी आता है पर काम करके चला जाता है । साबरा तो बस 'बतियाती' ही चली जाती है। ले दे कर वही सादिक़ की बातें, यह करता है, वह करता है, मुझे बहुत मानता है, मौजी का मन बहल जाता ।

साबरा चली जाती, पर मौजी को शाम के वक्त खेतों से लौटने में ज़रा भी देर हो जाती, ते उसका कलेजा धक धक करने लगता । दोपहर को जब श्मशान के रास्ते नदी नहा कर लौटती, तो खेतों के पास उसे लगता कि सादिक़ उसका पीछा कर रहा है, उसकी कल्पना उड़ान भरने लगती । नीचे जलती धरती का मान न रहता वह जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाती तो पैर खेत की मेड़ से नीचे सरक जाता । मौजी को लगता सादिक़ ने उसे दबोच लिया है वह गिरते गिरते सम्हल कर मुड़ कर पीछे देखती 'कोई भी तो नहीं ! . . . ' मुझे क्या हो

गया था जो इतना डर गई । सादिक़ !सादिक़ भला ऐसा कर सकता है ? सादिक़ बहुत शरीफ लड़का है ।

समय किसी के रोके नहीं रुकता । सादिक़ ने अपनी गृहस्थी में और भौजी ने अपने मुनुआ के पालन पोषण पढ़ाने लिखाने में कितने ही वर्ष बिता दिए। दशहरा आता, रावण फूंका जाता, नाग पंचमी के दिन दंगल होता, कोई भी त्योहार हो ईद् हो चाहे बकरीद, उस दिन सुब्रह से ही सादिक़ आकुल व्याकुल हो जाता, न जाने कैसी यादें घेर लेती उसे । साबरा बिगड़ती "न जाने कौन सी मनहूस आदत है वैसे अच्छे भले, त्योहार के दिन चुप ।" शाम को कपड़े पहन कर बाहर निकलता । उसका मन न मानता, त्योहार के दिन भौजी को सलाम करने ज़रूर जाता । भले ही अब वह उसका काम नहीं करता । बहुत इज़्ज़त करता है वह भौजी की ।

साल पर साल बीतते गए, पर सादिक़ के इस क्रम में अन्तर न आया त्योहार होता तो भौजी जानती, आज सादिक़ ज़रूर आयेगा । सादिक़ आता, भौजी जैसे इन्तज़ार कर रही हो । गेहूं बीनने को बैठ जाती, आंखें नीची किए गेहूं बीनते बीनते पूछती "अच्छे हो सादिक़ ?" और वह बिना सोचे समझे भौजी की बातों का जवाब दिए जाता, पर उसकी आंखें उसकी सुडौल कलाई पर जमी रहती ।

सादिक़ हैरान होकर सोचता, अरसा बीत गया, दुनिया बदल गई दुनिया का चलन बदल गया । सादिक़ के बाल सफ़ेद हो गए । बेटी ब्याह के लायक़ हो गई, सादिक़ का घर पक्का बन गया, पर भौजी की कलाई उसे वैसी ही लगती, जिसे वह घंटों निहारता था बचपन में । न जाने कौन सी इच्छा बलवती हो जाती । सादिक़ को उन्माद सा हो जाता, जी चाहता उस सुघड़ कलाई को अपनी मुट्ठी में मज़बूती से पकड़ ले ।

भौजी गेहूं के दानों पर नज़र गड़ाए कहती, अब तो मुनुआ का ब्याह हो जाए तो चैन से भगवान का भजन करूं । अब मुझसे नहीं सम्हलता सब कुछ । कट ही गई अपनी भी सादिक़, अब तो थोड़ी ही रह गई है . . .।

सादिक़ को झटका सा लगता । भौजी ने उसे क्या क्या याद करा दिया, गोरी गोरी चूड़ियों से भरी कलाइयां, खैरारी के तट पर जलती चिता ... भौजी के अन्तर में छिपा नेह ; . . . न जाने क्या क्या । सादिक़ घबरा उठता। भौजी को उसने कभी नहीं समझा है । भौजी कहती "कुछ बोलता नहीं सादिक़?" सादिक़ क्या बोले । कभी बोल पाया है क्या उम्र भर ? घबरा कर कहता "चलता हूं, बैलों को सानी देनी है । सलाम भौजी ।"

●●●

बीच का दरवाज़ा

लेटे लेटे डोरथी ने सुना, सुनील ऊंची आवाज़ में आया से कह रहा था "अपनी मालकिन से कह दो, पास के कमरे में एक शरीफ़ आदमी रहता है। मुझे यह हंगामा क़तई पसन्द नहीं । आयन्दा मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूंगा।" डोरथी सन्न रह गई । यह सीधा सा दिखने वाला सुनील उसे पुलिस की धमकी दे रहा है ।

टामस का रंग सांवला, पर नक़्श ऐसे तीखे कि बरबस ही किसी स्त्री का मन मोह लेते । यह बात नहीं, कि टामस अपने सलोने चेहरे और गठीले बदन का फ़ायदा न उठाता हो । उसने कितनी ही औरतों से दोस्ती की और उनसे सभी तरह का फ़ायदा उठाया, पर यह बात तो औरों के साथ थी । डोरथी को वह वाक़ई पसंद करता था। वह दिन डोरथी भूल नहीं सकती, जबकि खाते पीते, सोते जागते, हर समय टामस उसे घेरे रहता । डोरथी पर उसने सैकड़ों रुपये खर्च किये । बड़े-बड़े होटलों में डिनर दिए और ऐसी बढ़िया विदेशी शराबें पिलाईं, जिनका नाम भी डोरथी न जानती थी । ऐसे ही टामस ने एक दिन बड़ी संजीदगी के साथ डोरथी से विवाह का प्रस्ताव किया था । अब याद करती है तो डोरथी के कलेजे में हूक सी उठती है, पर उस समय तो उसने बड़ी लापरवाही के साथ कहा था "शादी ! ऐसा तो मेरा कोई इरादा नहीं ।" इसके बाद भी टामस ने बहुत मौक़ा दिया था पर .... ।

उन बातों को याद करने से क्या फ़ायदा । अब तो टामस की जगह पर बुड्ढा मिकेनिक, जिसकी दोनों टांगें लड़ाई में काम आई थी और अब वह बैसाखी के सहारे चलता था, गंदा घिनौना, शराबी फ़ौजी, दिन रात डोरथी का जी जला रहा था । वह पैसे-पैसे को मोहताज रहती और पहली तारीख़ का बेसब्री से इन्तज़ार करती रहती । ज्यों ही मिकेनिक पेंशन लेकर घर आता वह उसकी पूरी तलाशी लेती, पर जेब में दस-बीस रुपये से ज्यादा न निकलते । डोरथी, ग़ुस्से में बुरी तरह चीखती, चिल्लाती, अपना सर पीटती । फ़ौजी को धक्का देकर नीचे गिरा देती । अपने दोनों हाथों से अपना सर पीटती फिर वही हाथ फ़ौजी के ऊपर पटकती रहती, पर वह फ़ौजी का बच्चा एक शब्द न बोलता

कि सारी पेंशन क्या हुई ।

यूं तो अपने ज़माने में डोरथी का काम भी अच्छा चलता था । क़ानूनी-ग़ैर क़ानूनी सभी तरीक़ों से खूब पैसा कमाया और उड़ाया । यह उसी का दम था कि अपनी लड़कियों को इतना पढ़ाया लिखाया और अब सब ठिकाने से लगी हैं । पर डोरथी के जी की जलन कम होने के बजाय और बढ़ गई है। अब तो उसकी आमदनी से घर का ख़र्च भी नहीं चलता । न तो बड़े घरों की औरतों के उतने बच्चे ही होते हैं और न उन घरों में डोरथी की पूछ ही रह गई है । हर चार क़दम पर तो नर्सिंग होम खड़े हो गए हैं और न अब उसे किसी की 'इज़्ज़त बचाने' जैसे काम में रुपये ऐंठने को मिलते हैं । इस कमबख्त फैमिली प्लानिंग के प्रचार ने सब चौपट कर दिया । नहीं तो बहुत से भले घरों में गुप्त रूप से डोरथी ही काम आती थी । ऐसे ही मौंको पर चतुर मिडवाइफ़ की क़ीमत पहचानी जाती है सेठ मन्ना मल की विधवा बेटी को जब गर्भ रह गया था तो सेठ ने डोरथी के आगे हाथ जोड़ लिए थे "मेम साहब अब तो सबकुछ आपके हाथ में है ।" डोरथी ने आसामी ताड़ कर २०००/- लिए थे । "सेठ साहब यह सब आपके लिए है वरना मैं ऐसे जोखिम के काम नहीं करती । हमें भी तो खुदा को मुंह दिखाना है ।"

पर अब तो ज़माना ही बदल गया । डोरथी की आमदनी का ज़रिया ही न रहा । कुछ ग़ैर कानूनी नहीं । डाक्टर की सहायता उपलब्ध । ख़ैर ! अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए डोरथी ने सोचा है कि वह, मिकेनिक वाला कमरा, साथ में लगा ड्रेसिंग रूम और छोटा वाला वरांडा किराए पर उठा देगी । ६००-७०० तक तो मिल ही जायेंगे । पर अभी तक कोई ढंग का किराएदार नहीं मिला । डोरथी घर गृहस्थी, बाल बच्चे वालों को नहीं रखना चाहती । एक और झंझट पाल लो । इन्हीं सब उलझनों में डोरथी परेशान रहती है ।

उस दिन डोरथी मिकेनिक वाले कमरे की सफ़ाई करवा रही थी । उस बूढ़े फ़ौजी का पलंग धूप में पड़ा था । एक गंदी-सी आराम कुर्सी पर, फ़ौजी के गन्दे कपड़े पड़े थे, जो देखने में चीथड़े जैसे लग रहे थे । डोरथी मैरून रंग का शाल ओढ़े, दिसम्बर की धूप का आनन्द ले रही थी । सड़क पर बंगले के पास एक युवक खड़ा था । शायद किसी का घर पूछ रहा हो, या किसी का इन्तज़ार कर रहा हो डोरथी को युवक बड़ा अच्छा लगा । सलीक़े से पहना हुआ सूट, पीछे की ओर संवारे घुंघराले बाल, सांवला रंग और तीखे नक़्श । डोरथी को लगा वह उसी की ओर आ रहा है । डोरथी का मन न जाने कहां से कहां भटक गया । टामस ! बिलकुल टामस । अब तो वह भी

बुड्ढा हो गया होगा । अपनी जवानी के दिनों में वह भी ऐसा ही था ।

डोरथी उठकर गेट के पास आ गई । युवक उसके पास आया और बताया कि"मकान की तलाश में है, क्या आपको मालूम है कि आस पास किराए के लिए कोई मकान खाली है"। डोरथी ने युवक को दोनों कमरे दिखाए और थोड़ी बात चीत के बाद ६५० रु. महीने पर मकान सुनील को दे दिया ।

मिकेनिक की खाट स्टोर रूम में डाल दी । डोरथी ने सुनील को थोड़ा फ़र्नीचर भी दिया, और सारा समान यथा स्थान लगवा दिया । फिर अपने और सुनील के कमरे का बीच वाला दरवाज़ा बन्द करके अपने पलंग पर लेट गई आज वह काफी थक गई थी । सारा दिन सुनील के कमरे की व्यवस्था में बीत गया । फ़ौजी अभी घर न लौटा था । डोरथी डर रही थी कि शाम को आकर ज़रूर कोई गुल गपाड़ा मचाएगा । वह नहीं चाहती कि इस नौजवान के सामने, जिसकी शक्ल-सूरत, चाल-ढाल सब कुछ टामस से मिलता है, के सामने कोई 'सीन क्रियेट' हो । डोरथी जितनी देर सुनील के कमरे की व्यवस्था करती रही, सोचती रही, 'कहीं सुनील टामस का बेटा तो नहीं ? हो सकता है टामस ने किसी हिन्दू लड़की से शादी कर ली हो ।' फिर उसे अपने पर हंसी आई, मैं भी क्या अजीब ख़ब्ती हूं, हिन्दू लड़की से भले ही शादी कर ले पर टामस तो हिन्दू नहीं हो जायेगा । उसने अपना सिर झटका, नहीं यह सब कुछ नहीं।

डोरथी तो सुनील के काम में, उसके कमरे की व्यवस्था करने में खपती रही, पर उसके व्यवहार में बड़ा पराया पन था । न तो उसने एक शब्द 'धन्यवाद' कहा और न किसी तरह आभार प्रगट किया । एक अजीब उपेक्षा भरा व्यवहार था । डोरथी चाहती थी वह कुछ बात करे, एक भला पढ़ा लिखा लड़का मिला है जो सुसंस्कृत है, सभ्य है, उसके साथ कुछ समय बिता कर डोरथी को अच्छा लगेगा । वर्षों हो गए, अपने में ही जलती कुढ़ती रहती है पर कहीं अच्छे लोगों के साथ हंस बोल कर चाय पीने का मौक़ा ही नहीं मिला ।

बेचारा लड़का अकेला है । डोरथी उसे किराएदार की तरह नहीं वरन् अपने बेटे की तरह रखेगी । बेटा डोरथी की ऐसी साध है जो कभी पूरी नहीं हुई । कभी कुछ अच्छा बनाएगी तो भेज देगी, कभी चाय पर बुलायेगी । सुनील का रूखा व्यवहार खटकता ज़रूर है, पर डोरथी को विश्वास है कि वह अपनी व्यवहार कुशलता से उसे ठीक कर लेगी ।

दिन में वह धूप में बैठी, बैठी बुनाई करती रही । जितनी तेज़ी से उंगलियां सलाइयों पर चल रही थी, मन भी न जाने कहां कहां भटक रहा था। न जाने कितनी पुरानी स्मृतियां आकर इकट्ठी हो गई थी । इसी में टामस याद

आया, 'जब हम दोनों कहीं साथ जाते, रास्ते में किसी पेड़ का साया या अंधेरा आ जाता, तो टामस कभी न चूकता इतनी जल्दी आलिंगन करके झट से अलग हो जाता कि डोरथी को हंसी आ जाती, उसकी फुर्ती पर हैरान होती।' वही डोरथी है, टामस ! जो आज एक 'किस' के लिए तरसती है ।' शायद टामस भी कभी याद करता हो, पर उसे क्या मालूम कि डोरथी उन पिछली यादों के सहारे ही जन्दगी काट रही है ।

धीरे धीरे धूप चली गई । सामने से सुनील आता दिखाई दिया । डोरथी ने बड़े उत्साह के साथ कहा "मि. सुनील, शाम की चाय हम लोग साथ ही पियेंगे, आज मैंने एक नई चीज़ बनाई है ।"

"ओह । नो थैंक्स । आज शाम के लिए मैं अपने एक मित्र से वादा कर चुका हूं ।" और अपने कमरे में चला गया । डोरथी क्षण भर को सुनील का मुंह निहारती रह गई ।

डोरथी अपने कमरे में आगई । बुड्ढा फौजी कुर्सी पर बैठा कोई पुराना अख़बार पढ़ रहा था । उसकी बैसाखी डोरथी के पलंग से टिकी रखी थी । डोरथी ने लात मार कर बैसाखी को नीचे गिरा दिया और पलंग पर लेट गई। सारी शाम वह लेटी रही । सुनील के कमरे से आती हर आवाज़ उसे सुनाई दे रही थी । उसके कमरे में स्टोव जला, फिर प्यालों के उठाने धोने की खटपट हुई । अब वह शायद लाइट जला कर कुछ पढ़ रहा था ।

सुनील की उपेक्षा, टामस की याद, और फ़ौजी की मौजूदगी, सभी बातों से डोरथी का मन बड़ा खिन्न था । वह चाहती है कि तबियत कुछ बदल जाय । कितने दिनों से वह पिक्चर देखने नहीं गई, यह सही है कि अब उन तस्वीरों में उसका मन नहीं लगता । पिक्चर तो वह संग साथ में देख लेती है। उसके पास पैसे नहीं है वरना दो पैग रम में उसका काम चल जाता । अपने कमरे या रसोई, जहां भी अकेली होती है दो घूंट गले से नीचे उतार लेती है । फ़ौजी के साथ बैठ कर शराब पीना उसे क़तई पसन्द नहीं । शराब तो अपने प्रिय, अभिन्न मित्र, प्रेमी के साथ ही पीने की चीज़ है । शराब तो वह अभी मंगा सकती है, पर दो दिन से गोश्त वाला पैसों का तग़ादा कर रहा है । माली सीधा है, मुंह से मांगता नहीं पर पैसे तो उसे भी देने ही होंगे ।

इसी उधेड़ बुन में, उसे एक उपाय समझ में आया । उसने सोचा कल कबाड़ी को बुला कर, कुछ रद्दी काग़ज़, लोहे का पलंग जो टूट गया है, टूटी कुर्सियां, और जो तमाम लोहा लंगड़ पड़ा है उसे बेच देगी । इस समय उसके पास जो कुछ पैसे हैं उनसे बाहर जाकर होटल में बैठ कर तो शराब नहीं पी

सकती, पर एक देसी अद्धा ज़रूर आ जायेगा । ठीक है, यही सही ।

रात को ग्यारह बजे डोरथी का खाना, पीना खत्म हुआ । आज टामस की याद में ज्यादा ही शराब पी ली थी, वह किसी तरह अपने को सम्हाले हुए सोने की तैयारी कर रही थी, कि फ़ौजी उसके कमरे में घुस आया । पता नहीं आज उसे क्या उम्मीद थी । पर डोरथी को उस सिकुड़ी हुई खाल वाले आदमी को छूने में भी घृणा होती है । डोरथी आपे के बाहर हो गई और चप्पल खींच कर फ़ौजी के मुंह पर मार दी । मिकेनिक भले ही अब बुड्ढा हो, पर वह भी आख़िर फौजी ही था । उसने अपनी एक बैसाखी पर खड़ा रह कर दूसरी बैसाखी से डोरथी की वह मरम्मत की कि नशा हिरन हो गया । सारी रात डोरथी को नींद न आई । मार तो पहले भी खाई थी, पर आज दर्द के साथ अपमान का दर्द उसे साल रहा था । उसके दुख और शर्म की सीमा नहीं थी। सुनील पर क्या इम्प्रेशन पड़ा होगा । जो डोरथी नहीं चाहती थी, जिसके लिए डर रही थी, वही हो गया ।

डोरथी सुबह देर तक न उठी । उसका अंग अंग दुख रहा था । बैसाखी की मार से सारा बदन सूज गया था । वह सुबक सुबक कर रो रही थी । 'मैं नहीं जानती थी टामस, तुम्हें छोड़ कर मुझे इतने दुख उठाने पड़ेंगे।' जिस टामस को डोरथी भूल चुकी थी, वह ढलती उम्र में इतना याद आयेगा । उसके लिए व्याकुल हो उठेगी डोरथी, वह भी यह न जानती थी ।

लेटे लेटे डोरथी ने सुना, सुनील ऊंची आवाज़ में आया से कह रहा था "अपनी मालकिन से कह दो, पास के कमरे में एक शरीफ़ आदमी रहता है। मुझे यह हंगामा क़तई पसन्द नहीं । आयन्दा मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूंगा।"

डोरथी सन्न रह गई । यह सीधा सा दिखने वाला सुनील उसे पुलिस की धमकी दे रहा है । डोरथी बच्ची नहीं, उसने दुनिया देखी है । और देख लेगी इस शरीफ ज़ादे की शराफत भी । पुलिस का डर दिखाता है ? देखी है कभी पुलिस ? डोरथी के तो पुलिस से ही दो दो हाथ हो चुके हैं ।

वह गोरी सी लड़की जब रिश्तेदारों की नज़र बचा कर, सुनील से मिलने आती है तब उसकी शराफ़त कहाँ चली जाती है ? "मैं कहती हूं आखिर उसे दूसरों के मामले में बोलने का क्या हक है ?"

डोरथी को रह रह कर ग़ुस्सा आ रहा था । एक एक से बदला लेगी। ज़रा सी बदन में ताक़त आते ही, सबसे पहले तो सुनील का सामान घर से बाहर फेंक देगी, और उसे कुत्ते की तरह बंगले से बाहर निकाल देगी । एक दिन ऐसा भी आयेगा कि सुनील उस गोरी लड़की का हमल गिराने के लिए

उससे खुशामद करेगा, तो डोरथी भी शराफ़त के पुतले पर थूक देगी ।

डोरथी का दिमाग़ उड़ा जा रहा था । नाक और मुंह से गरम हवा निकल रही थी । शायद बुखार है । उसने अपने माथे पर हाथ फेरा, खून सूख कर जम गया था । चेहरा सूजा हुआ था । बुखार की वजह से चक्कर पर चक्कर आए जा रहे थे । डोरथी फूट फूट कर रोने लगी । आज कोई उससे सहानुभूति के दो शब्द भी कहने वाला नहीं । आया कई बार कमरे में झांककर लौट गई थी । जब भी आया कमरे में आई, डोरथी ने मुंह ढक लिया और सोने का बहाना किया ।

धीरे-धीरे शाम भी हो गई । अंधेरा हो गया । डोरथी वैसे ही लेटी रही । उसने दिन भर कुछ न खाया था । दुख और विषाद उसकी भूख प्यास पर छाए थे । कमज़ोर दुर्बल डोरथी कातर हो उठी । "ज़िन्दगी की एक छोटी सी भूल का इतना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है टामस ? तुमने पहले बताया क्यों न था ? इस मिकेनिक को मैं कभी भी प्यार नहीं कर पाई, पर मजबूरियां मुझे हमेशा उसके साथ ही बांधे रहीं ।"

घड़ी ने ग्यारह बजाए । वह बुख़ार में तप रही थी । गला प्यास के मारे सूखा जा रहा था । पर पानी वहां न था । अद्धे में काफ़ी शराब बची थी। डोरथी एक ही सांस में पी गई । खाली पेट, लगा कि अन्दर के सारे अवयव कटे जा रहे हैं । थोड़ी देर में शरीर में गरमी आ गई । उसका बुखार तेज़ होता जा रहा था । तेज़ ɪ और तेज़ । वह होश खोती जा रही थी । भूख प्यास सबसे परे डोरथी की एक ही इच्छा थी कि उसके जलते माथे पर कोई ठंडा हाथ रख दे । इतना ठंडा जैसे बर्फ़ और यही हाथ बढ़ते-बढ़ते उसके सीने तक पहुंच जाय, तो डोरथी की ज़िन्दगी भर की जलन समाप्त हो सकती है। पर इतना ठंडा हाथ दुनिया में किसी का नहीं सिर्फ टामस का है । हां टामस का हाथ ही इतना ठंडा हो सकता है । टामस तुम बड़े दयालु हो, कोमल हृदय हो, किसी का दुख नहीं देख सकते । डोरथी को तुम आज भी प्यार करते हो । इसीलिए तुम आ गए । यह अच्छा ही किया डार्लिंग । आज डोरथी तुमसे झूठ नहीं बोलेगी । सब कुछ बता देगी । मैं जवानी के दिनों में तुम्हें भूल गई थी टामस । जब से इस फ़ौजी का साथ हुआ तुम हमेशा याद आए । टामस, मैं मर रही हूं शायद तुम इसीलिए आ गए कि अन्तिम भेंट हो सके । मेरे प्रियतम! वह अंधेरे में टटोलती हुई टामस का आलिंगन करनो को उठी । उसके पैर लड़खड़ा रहे थे । दिमाग़ में भयानक आंधी चल रही थी । वह टामस से मिलने के लिए बढ़ी जा रही थी कुछ क्षणों में ही दो कमरों के बीच का दवराज़ा खुल

गया । डोरथी अंधेरे में सोते हुए टामस से लिपट गई । "मुझे तुम्हारी गोद में शान्ति मिलेगी, टामस ! मुझे इस फ़ौजी की यातना से बचा लो प्यारे । मुझे माफ़ कर दो, सज़ा दे लो, पर अपने से दूर मत फेंको, टामस ।" वह आवेश में रो रही थी । उसका गाल टामस के गाल पर रखा हुआ था । टामस ने अपना ठंडा हाथ उसके जलते हुए माथे पर रख दिया । वह शीतलता में समा गई । कितना अच्छा है शीतलता का आलिंगन, धीरे धीरे वह संज्ञाशून्य हो गई।

सुबह नौ बज गया था । खिड़कियों से छन छन कर धूप आ रही थी। डोरथी ने बहुत ज्यादा थकान के साथ आखें खोलीं । वह अपने बिस्तर पर लेटी हुई थी । उसकी नज़र बीच के दरवाज़े की सिटकिनी की ओर गई वह खुली हुई थी । इससे पहले कि वह सोचती रात को क्या हुआ था, इस बारे में कुछ समझने की कोशिश करती, आया ने उसके हाथ पर ६५० रुपये रख दिये। "इस कमरे का किराएदार, कमरा छोड़ कर चला गया और ये किराए के रुपये दे गया है ।"

●●●

“ संयोग ”

मैं बग़ैर कुछ हीला-हवाला किए ऊपर की बर्थ पर कूद कर चढ़ गई और एक कोने में सिकुड़ कर बैठ गई । अपने और युवक के बीच में अपनी छोटी-सी अटैची रख ली और संतोष की सांस ली ।

आलोचकों का मत है कि साहित्य में संयोग के आधार पर पुष्पित हुई कथा, नाटक और कहानी का कोई अधिक मूल्य नहीं होता । उनका कहना है, कि ज़िन्दगी में संयोग कम और कठोर सत्य अधिक होते हैं । ज़रूर होते होंगे । आलोचकों ने ढेर सारे लेखकों की कृतियों का छिद्रान्वेषण कर करके ज्यादा दुनिया देखी है और छिटपुट कहानी लिखने वालों ने कम ।

अब इसे तो संयोग ही कहा जाएगा, कि हमेशा लेट आने वाली गाड़ी उस दिन समय से पहले ही स्टेशन पर पहुंच गयी । मुझे ऐसे संयोग की आशा न थी इसलिए धीरे-धीरे आराम से अपने हॉस्टल से निकली, रिक्शा पाने के लिए २००-२५० कदम आगे बढ़ी, तब कहीं जाकर रिक्शा मिला । फिर रास्ते में पड़ने वाला रेल का फाटक, उसे तो बंद होना ही था, क्योंकि ऐसा प्रायः होता है । किस्सा कोताह, जब मैं पुल की सीढ़ियां उतर रही थी तो ट्रेन ने छूटने के लिए सीटी दे दी थी ।

बदहवासी में दो दो सीढ़ियां एकसाथ उतरती गाड़ी के पास पहुंची तो ट्रेन अपना पहला कदम उठा चुकी थी । जल्दी में सामने जो डिब्बा आया, उसी में दौड़कर चढ़ गई ।

उस समय रात के ग्यारह बज रहे थे । डिब्बा लोगों से ठसाठस भरा था । एक एक सीट पर आठ आठ आदमी एक दूसरे से सटे एक दूसरे के कंधे पर सिर रखे सो रहे थे । न ट्रेन में अधिक भीड़ होने का गिला न दूसरे से 'ऊपर क्यों गिरे पड़ रहे हो' का शिकवा ! वे नींद में भी गाड़ी की लोरियां सुन रहे थे । धीरे धीरे ऐसे हिल रहे थे मानो पालने में झूल रहे हों । यही तो अनोखापन है भारतीय रेल का ।

सब कुछ शांत था । भीड़ ने भीड़ को स्वीकार लिया था । आने-जाने का रास्ता तरह-तरह के बक्सों, पोटलियों, गठरियों और सामान से भरे बोरों से पटा पड़ा था ।

"हे भगवान, क्या ऐसे ही में रात बितानी पड़ेगी ।' यह सोचते हुए इधर-उधर नज़र दौड़ाई । ऊपर की बर्थ पर एक सुदर्शन, पढ़ा लिखा, सभ्य युवक चादर तान कर सो रहा था । उसने मुझे खड़ा हुआ देख लिया था फिर भी जान-बूझ कर सोने का बहाना कर रहा था ।

मैंने वर्थ पर अटैची से खटखट करते हुए कहा, "ए मिस्टर, सारे डिब्बे में तिल रखने की जगह नहीं है और आप हैं कि पूरी बर्थ पर पैर फैला कर सो रहे हैं ।"

वह शरारत भरे लहजे में बोला, "दरअसल मैं बीमार हूं ।"

उसके नटखटपन पर मुझे गुस्सा आ गया, "बीमार या मक्कार ?"

वह उसी लहजे में बोला, "ख़ैर; मक्कार ही मान लीजिए । मगर मैं आपको बैठने के लिए थोड़ी-सी जगह दे सकता हूं । उधर कोने में बैठ जाइये।"

मैं बगैर कुछ हीला-हवाला किए ऊपर की वर्थ पर कूद कर चढ़ गई और एक कोने में सिकुड़ कर बैठ गई । अपने और युवक के पैरों के बीच में छोटी-सी अटैची रख ली और संतोष की सांस ली ।

अब तक वह मक्कार युवक पूरी तरह जाग चुका था और पीठ टिकाकर बैठा हुआ था ।

"देखा आपने, ये डब्बे के सारे लोग जो अब तक गहरी नींद में सोए हुए थे, वे एक लड़के के एक लड़की को बैठने की जगह देने की दुर्घटना पर कैसे सचेत हो गए हैं ।"

'दुर्घटना' शब्द पर मेरे होंठ कुछ हिले, पर मैंने उन्हें ज्यादा फैलने से रोक दिया ।

मेरी इस हरकत की परवा किए बग़ैर वह फिर बोला, "बात यह है, कि अपने देश में अगर कोई लड़का किसी लड़की को अपने पास बैठने की जगह दे दे तो मान लिया जाता है, कि लड़का बुरे चाल-चलन वाला है या उसके इरादे ख़तरनाक हैं ।"

"मैं तो ऐसा कुछ नहीं सोचती ।"

"फिर भी यह तो सोच ही रही हैं कि इसने एक लड़की से गपशप करने का मौका खोज ही लिया ... है न यही बात । दरअसल मैं दूसरों के मन की बात जल्दी जान लेता हूं ।"

"जानेंगे तो खाक, हां आप बातूनी ज़रूर हैं ।"

"फिर यह भी मान लीजिए, कि सफ़र में बातूनी का साथ सुखद संयोग होता है ! लगता है, आप इस बात से सहमत हैं ।"

"चलिए मान लेते हैं ।" मैंने पीछा छुड़ाने की गरज से कहा ।

"यह हुई न बात ।" वह चहका, "हां, तो मैं अर्ज़ करना चाहता हूं, कि सिर्फ़ बातें ही नहीं मुझे दोस्ती करना भी अच्छा लगता है । इस मामले में मैं बिलकुल औरतों जैसा हूं । बस, दो मिलीं औरं हो गई दोस्ती, और ज़्यादातर वह दोस्ती बस ज़रा सी देर की होती है । हम दोनों ही को लीजिए । आठ दस स्टेशनों के बाद मैं उतर जाऊंगा । उससे कुछ पहले या बाद में आप उतर जाएंगी । फिर भी अगर कुछ घंटों का सफ़र इस तरह गुज़ार दें, कि उसकी स्मृति ... अरे, अरे आपके तेवर ! तेवर बदलने से मैं सचमुच डर गया हूं, पर मेरा मतलब है कि क्या हम लोग थोड़ी देर के लिए अच्छे मित्र नहीं बन सकते? आप चुप क्यों हैं, बताइये न ?"

"मेरा तो यही कहना है कि आप अपने को किसी मनोविशेषज्ञ को दिखाइये ।"

वह खुल कर हंसा । सफेद चमकते हुए दांत, भारी मर्दानी हंसी । कुछ देर के लिए उस पर नजर टिक ही गई ।

"दिखाऊं किसे । मनोचिकित्सक तो मैं खुद ही हूं ।"

मैंने गौर से उसकी तरफ देखा । मनोचिकित्सक !

मुझे अपनी ओर देखते हुए पाकर बोला, "आपको यक़ीन नहीं होता। लीजिए, अब मैं अपने बारे में आपको बता ही दूं । मैं सचमुच मनोचिकित्सक हूं । विदेश में रहता हूं । नौ साल के बाद अपने देश लौटा हूं और वह भी शादी करने । बाद में अपनी पत्नी को लेकर विदेश लौट जाऊंगा । अपने देश में लौटकर मुझे इतना अच्छा लग रहा है कि चाहता हूं, सब कुछ दिल खोलकर गले लगा लूं । गले लगाने की बात इसलिए कि यहां का सब कुछ इतना निजी है, कि मेरी खुशी का ठिकाना नहीं । छोटे-छोटे स्टेशनों पर रुकती गाड़ी, सेकेंड क्लास का सफर, यह बिछुड़ी हुई भीड़, भारतीय समाज के क़ायदे-क़ानून आदि आदि, सब मेरे हैं । नौ साल तक मैं अपने को हर समय परदेश में ही समझा करता था । मैं अपनी भावनाएं कैसे प्रकट करूं । यह समझ नहीं पा रहा हूं ।"

'मनोचिकित्सक' 'विदेश' 'शादी' आदि शब्दों ने मेरे मन में खलबली मचा दी । दिल थाम कर कुछ सोचना चाहती थी । पर यह बातूनी कुछ सोचने दे तब न ।

वह फिर बोला, "आप नाराज़ तो नहीं हो गईं ? बात यह है कि अपने देश में लड़कियां बड़ी जल्दी नाराज़ हो जाती हैं या नाराज़ होने का दिखावा करती हैं । जैसे मैं किसी लड़की से कहूं आप बड़ी खूबसूरत हैं तो मेरी शामत आ जाएगी । अब बताइए, तारीफ़ करना भी कोई बुरी बात है ?"

"मैं तो नहीं सोचती आप ने कोई ऐसी बात कही है, जिस पर नाराज़

हुआ जाए । ज्यादा बोलना आपका निजी मामला है । मैं इसका बुरा क्यों मानूं।"

"आप ठीक कहती हैं । मैं बचपन ही से बड़ा मुखर था । इसी वजह से मुझे अपनी अध्यापिकाओं का बहुत प्यार मिला । हां, यह ज़रूर हैं, कि इतने साल विदेश में रह कर वाचाल ज़रूर हो गया हूं । इसे भगवान की कृपा ही कहिए कि लड़कियों से दोस्ती बहुत जल्दी होती है मेरी । वैसे आप जैसी लड़की से दोस्ती होना मैं अपने व्यवहार की बहुत बड़ी सफलता मानता हूं ।"

मुझे हंसी आ गई । कुछ उत्तर न दे सकी । बात बदलने के लिए कहा, "आप तो सो रहे थे । दो बज रहे हैं । सो जाइए न ।"

"सोया तो गया काम से । मुझे दो स्टेशन बाद उतरना है । तीन बजे आता है । आपका साथ है । एक घंटा मजे में निकल जाएगा ।"

सचमुच पता ही न चला एक घंटा कैसे सरक गया । इतनी देर में उस युवक ने न जाने कितने क़िस्से सुनाए । आख़िरी क़िस्सा तो लाजवाब था। उसकी टीचर ने कहा कि अपने पिता को पत्र लिखो । कक्षा को यह काम दे कर टीचर कापियां जांचने लगी । सारे लड़के लड़कियां पत्र लिखने लगे । मगर यह हज़रत बाहर जाने लगे । टीचर चिल्लाई, "कहां जा रहे हो ?" यह बोले, "मैडम, इनलैंड लाने ।" सारी कक्षा हंस पड़ी । टीचर ने कहा, "अच्छा पहले पूरे पीरियड खड़े रहो, इसके बाद जाना इनलैंड लेने ।"

खड़े होने की बात कहकर वह सचमुच खड़ा हो गया । गाड़ी रुक गई थी । उसने अपना सामान उठाया और बोला, "आपके साथ इतना अच्छा सफ़र बीता इसके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकारें । हो सकता है, इसी तरह फिर कभी मुलाक़ात हो जाए ।"

मेरी हंसी फूटी पड़ रही थी, पर अपने को रोकती हुई बोली, 'मिलेंगे ही।'

"इतना विश्वास है आपको । बड़ी आशावादी हैं आप ।" यह कह कर वह 'अच्छा तो हम चलते हैं' के अंदाज में उतर गया ।

छोटा सा अंधेरा सा स्टेशन था । गाड़ी धीरे धीरे खिसकने लगी । मैंने सोचा मैं भी कैसी मूर्ख, स्टेशन का नाम भी नहीं पूछा । बाहर देखने की कोशिश की कि शायद प्लेटफार्म पर लिखा नाम पढ़ सकूं, पर अंधेरे में कुछ दिखाई न दिया । फिर भी मुझे पूरा विश्वास था कि यह जायस ही है । हां जायस, जहां से कल वे सब लोग हमारे घर आने वाले हैं और उन्हीं लोगों से मिलने या परम्परा के अनुसार अपने को दिखाने जा रही हूं ।

एक हफ़्ते पहले ही मुझे अम्मां की चिट्ठी मिली थी कि जायस के एक

बड़े सुसंस्कृत, पुराने रईस परिवार में तुम्हारे विवाह की बात चलाई है । लड़का विदेश में मनोचिकित्सक है । आजकल भारत में है । २६ तारीख को लड़के समेत सब लोग हमारे यहां तुम्हें देखने आएंगे । लड़का लड़की एक दूसरे को पसंद कर लें तो तुरंत शादी हो जाएगी और लड़का बहू को लेकर विदेश चला जाएगा । मां ने लिखा था, 'हमें तो सब कुछ बहुत अच्छा लगा, बाक़ी तुम देख लेना ।' आदि-आदि । मुझे सोच सोच कर हंसी आ रही थी, कि हम लोग तो पहले ही एक दूसरे को देख सुन चुके हैं, अब तो अम्मां बाबू की तसल्ली और रस्म रिवाज ही होने हैं ।

बड़े चतुर बनते हैं मनोचिकित्सक साहब, कुछ भी भांप नहीं पाए । मैं भी एक ही निकली, अपने बारे में कुछ नहीं बताया कि कहां जा रही हूं, क्यों जा रही हूं । नाम पता तो फ़रिश्ते भी नहीं जान सकते थे । वह मिस्टर तो किसी को पूछने का मौक़ा दिए बग़ैर ही सब कुछ बता गए, शादी करने आया हूं, विदेश में रहता हूं, मनोचिकित्सक हूं । अब मुझे लड़की की जगह देखेंगे, तो आंखें फटी की फटी रह जाएंगी ।

घर पहुंची तो देखते ही अम्मां बिगड़ीं, "अब आना हुआ है तुम्हारा ।" मैं मुस्कुरा कर रह गई । मुझे तो अब मन ही मन लड्डू खाना है और सब को देना है एक सुखद आश्चर्य कि हम दोनों एक दूसरे को देख चुके, पहचान चुके और पसंद कर चुके हैं ।

वे लोग कल आएंगे और घर में आज ही से अफ़रातफ़री मची है । बरसों की धूल झाड़ी जा रही है, पीतल की चीजें चमकाई जा रहीं हैं । उनका भाग्य भी मेरे भाग्य के साथ चमक रहा था ।

ड्राइंगरूम की सजावट, नाश्ते की चीजों की लिस्ट, खाने का मीनू सब के बारे में लम्बी-लम्बी बहसें हो रही थीं । बाबू लेने देने की बात कहते तो अम्मां कहतीं, 'पहले वे लोग लड़की तो पसंद कर लें । अभी से काहे उतावले हो रहे हो ।' बाबू बोले, 'पसंद क्यों न करेंगे । डाक्टर है, सुंदर है, पैसा भी हम खर्च करेंगे । फिर उनके पास ही कौन-सा टाइम है, जो दर्जनों में से एक छाटेंगे, दस दिन ही में तो लड़के को लौट जाना है ।'

'कुछ भी हो अम्मां । मुझे तुम्हारा ढूंढा लड़का पसंद है ।' मैंने मन ही मन कहा ।

मैं ऊपर के कमरे में थी । गाड़ी आकर रुकी । सोचा आ गए वे लोग। उठी कि तैयार हो जाऊं ।

इधर अम्मां हैं कि एक के बाद एक संदेशा भेज रहीं हैं, साड़ी पहन कर आना, जल्दी तैयार हो, ठीक से तैयार होना, यह नहीं कि जैसी हो वैसी उठ कर चल दो । ड्राइंगरूम से बात-चीत की आवाजें आ रही थीं । नाश्ता

लगने जा रहा था । बीच-बीच में भैया और बाबू की हंसी की आवाज सुनाई दे रही थी । मैंने सोचा ट्रेन में तो बच्चू खोपड़ी चाट गये थे, यहां बोली नहीं फूट रही है ।

उस ज़िंदादिल और सुदर्शन युवक को हैरत में डालने के अंदाज़ में मैं ड्राइंगरूम में घुसी तो कुछ क्षणों के लिए चकरा गई । आंखों को इधर-उधर घुमाया, पलकों को बार-बार झपकाया और सामने जो कुर्सी मिली उसी पर बैठ गई ।

बाबू ने जल्दी से परिचय कराया, 'मेरी बेटी अनुराधा । और यह हैं अनुव्रत सिन्हा ।' मेरे हाथ जुड़ गये । आंखें उठीं । उस सुदर्शन युवक का तो दूर-दूर तक पता न था और सामने था भारी भरकम नाम और शरीर वाले उस गंभीर युवक का मनहूस चेहरा, जिसने जवाब में हाथ जोड़ दिए थे और चुपचाप बैठ गया था ।

मैं हक्की-बक्की । जो कोई कुछ कह रहा था ध्यान से सुन रही थी। किसी ने कहा, कि तुम लोग बाहर घूम आओ । आपस में बातचीत कर लो। क्या क्या शौक हैं ? क्या पहले विदेश गई हो ? यह अनुव्रत की अम्मा, यह भाभी हैं, यह बुआ हैं । सबको नमस्कार करो और मैं यंत्रचलित सी जो कोई जो कुछ कह रहा था वह कर रही थी । इस भगदड़ मैं श्री अनुव्रत सिन्हा ने मेरी उंगली में अंगूठी पहना दी ।

पूरे कमरे में खुशी की लहर फैल गई । अम्मां धोती के पल्ले से आंखें पोंछने लगीं । भाभी ने मुझे गले लगा लिया और धीरे से बोली, "खुश रहो, अनु। लड़कों का रूप रंग नहीं देखा जाता । जी छोटा न करो ।"

इधर मैं सोच रही थी "संयोग । वे तो नाटकों और फिल्मों में होते हैं, जीवन में नहीं, क्योंकि संयोग नाटकों को हल्का, फिल्मों को सस्ता बनाता है । और ज़िंदगी, वह तो ज़िंदगी है, न हल्की न सस्ती । पर यह मुझे भ्रमित कर देने वाला संयोग - दोनों ही विदेश में रहते हैं, दोनों मनोचिकित्सक हैं, दोनों शादी करने आये हैं - मेरे जीवन में कैसे घट गया ।"

इसे आप क्या कहेंगे जीवन को झकझोर देने वाला संयोग या नाटक और कहानी वाला संयोग ।

●●●

छोटी बऊ

हमारी नई प्रधानाध्यापिका मिस मैसी, बड़ी सुसंस्कृत, विदुषी, सुन्दरी और आधुनिक विचारों की महिला थी । हम सब उनकी चाल-ढाल, पहनने ओढ़ने का ढंग और तौर-तरीक़ों के दीवाने थे । हर एक की कोशिश होती कि मिस मैसी के लहजे में बात करे, तेज़ी से चले और उनके जैसे कपड़े पहने ।

मैंने उस छोटे से क़स्बे में होश सम्हाला, जहां लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा के लिए सिर्फ एक स्कूल था 'म्युनिसिपल कन्या पाठशाला' इसी पाठशाला में मेरी बुआ, मेरी बड़ी बहनों ने शिक्षा पाई थी । उस ज़माने में उस क़स्बे में लड़कियों की शिक्षा लोअर मिडिल या अपर मिडिल तक समाप्त हो जाती थी ।

इसी स्कूल में पहले दिन जब मेरे जाने की तैयारी हुई तो काली पुती हुई, चिकनी की गई, जिसे हम घुटी हुई तख़्ती कहते थे, तैयार हुई, खड़िया की दवात और क़लम, नई किताब, नया बस्ता सब कुछ पाने का चाव भी था और स्कूल जाने का डर भी । मां ने मुझे सुबह सुबह नहलाया, कपड़े पहनाए और बस्ता ठीक किया, कंघी कर ही रही थी कि पास के घर से एक तेज़ महीन आवाज़ आयी, "लली चलियो स्कूल ।" मां झपटकर बाहर आई और कहा "बऊ, इधर आना ।"

छोटे कद की स्वस्थ, सलोनी, सांवली-सी औरत अन्दर आई । बऊ के दांत एकदम सफेद चमकदार जैसे मोती, बऊ का पीले रंग का २० हाथ का गजी का लहंगा, जिस पर काले रंग की गोट लगी थी, सुबह की बरसाती हवा में लहरा उठा । वह लाल रंग की मोटे कपड़े की ओढ़नी ओढ़े हुए थी, जिसके घूंघट से आधा मुंह छिपाए थी ।

मां ने कहा, "बऊ, आज से हमारी लल्ली भी स्कूल जायेगी, कल नाम लिख गया है इसे भी ले जाया करो ।"

बऊ ने स्नेह भरे दोनों हाथों से मुझे सम्हाल लिया । बऊ के लहंगे से चिपटना मुझे ज़रा भी अच्छा न लगा छिटककर अलग हो गई । बऊ हंसी उसने मेरी तख़्ती और बस्ता उठा लिया और लाड़ से बोली, "चलौ लल्ली,

माताजी से पइसा लै लीजियो ।"

मां ने मुझे दो पैसे दिए और मैं स्कूल की दाई के साथ चल दी । बऊ के गंवारू कपड़े मुझे बहुत बुरे लग रहे थे और उसके साथ जाने में मुझे शर्म आ रही थी । हमारे क़स्बे में सिर्फ गांव से आने वाली औरतें ही लहंगा ओढ़नी पहनती थीं । मैं तो अपने को शहर का मानती थी इसलिए मुझे बऊ के साथ चलने में बड़ी शर्म आ रही थी ।

हर स्कूल जाने वाली लड़की के घर के सामने जाकर बऊ आवाज़ देती, कुछ देर रुकती, जब लड़की बाहर आ जाती तो आगे चल देती । वह मेरी उंगली पकड़े हुए थी और हर लड़की से मेरा परिचय भी करा रही थी, कुछ ही दूर चलने पर लड़कियों का झुंड और बहू सब स्कूल के फाटक पर पहुंच गये ।

प्रार्थना हुई, फिर क्लास में गई, मन में बड़ी घबराहट हो रही थी, मैं रोने रोने हो रही थी पर क्लास में किसी ने कुछ ध्यान न दिया । राम राम करके खाने की छुट्टी हुई, मैं क्लास से बाहर आ गई, देखा सभी लड़कियां अपने-अपने पैसे लेकर बऊ के चारों ओर घेरा बनाकर खड़ी थीं और चीख़ पुकार मची थी ।बऊ दो पैसे के चने, बऊ एक पैसे की लइया, बऊ दो पैसे का चूरन, तेजाब वाला , बऊ सबको सुन रही थी मैं चुपचाप एक तरफ खड़ी थी ।

यह था लड़कियों का एक मात्र स्कूल । किसी ख़ोमचे वाले को फाटक के अन्दर आने की आज्ञा न थी, बऊ ही बाहर से सामान लाकर सब लड़कियों को बांट देती । सबसे निपटने के बाद बऊ ने मेरी तरफ देखा और कुछ मंगाने को कहा, कुछ समझ में ही न आया कि क्या मंगाऊं, बऊ ने मुझे खुद ही मूंगफली की पट्टी लाकर दे दी ।

धीरे धीरे स्कूल भी अपना हो गया और बऊ भी । बऊ हमें रोज़ ले जाती और पहुंचा जाती । हर त्योहार पर 'त्योहारी' लेने आती और परीक्षा फल निकलने पर 'इनाम'। हर घर से इनाम पाती और हर लड़की को मिडिल पास होने का आशीर्वाद देती ।

इसी क्रम मे मैंने इसी स्कूल से कक्षा सात पास की और बड़ी बेसब्री से जुलाई आने और स्कूल खुलने का इंतज़ार करने लगी । एक तो इस वर्ष मैं स्कूल के सबसे ऊंचे दर्जे की छात्रा होने वाली थी दूसरे हमारा स्कूल बहुत तरक़्क़ी करने वाला था । नए कमरे बनने थे, कुछ बन गए थे, अध्यापिकाओं के लिए नई कुर्सी मेज़ आने वाली थी सबसे बड़ी बात यह थी कि म्युनिसिपल बोर्ड कमेटी ने एक योग्य और नई प्रधानाध्यापिका की नियुक्ति की थी, जिससे स्कूल को और क़स्बे को बड़ी आशाएं थी । क़स्बे के वकीलों, व्यापारियों और अफ़सरों में इन्हीं बातों की चर्चा थी । सब सोचते कि अब हमारी बच्चियां अच्छे

स्कूल में पढ़ेंगी कुछ गुण ढंग सीखेंगी।

जुलाई आई, हमारा झुंड बऊ के साथ स्कूल चला। बऊ भी बहुत खुश थी। उसने सुना था कि एक और उसकी सहायिका दाई रखी जायेगी। तब बऊ का काम हल्का हो जायेगा वह बड़ी गुरुजी से काम सीखेगी और वैसा ही काम करेगी जैसे बड़े-बड़े स्कूलों की दाइयां करती हैं। फिर जब स्कूल इतनी तरक़्क़ी करेगा तो क्या बऊ की तनख़्वाह नहीं बढ़ेगी? १५ रु. में भला होता ही क्या है? अब तो उसका बेटा भी नवीं पास कर दसवीं में आ गया है, ब्याह तो उसने आठवीं पास करते ही कर दिया था, अब तो ख़र्चे बढ़ने ही बढ़ने हैं।

बऊ लड़कियों से बातें कर रही थी, "भगवान सबकी सुनता है। इसी स्कूल और लड़कियों की सेवा करते मैंने ज़िन्दगी बिता दी, लड़का पढ़ा लिया। अब भले लड़का नौकरी पर लग जाय पर मैं स्कूल नहीं छोडूंगी। इन्हीं प्यारी बेटियों के बीच आते जाते, उन्हें स्कूल ले जाते पहुंचाते मेरा रंड़ापा कट गया अब बुढ़ापे में इसको छोड़ थोड़े ही दूंगी।"

हमारी नई प्रधानाध्यापिका मिस मैसी, बड़ी सुसंस्कृत, विदुषी, सुन्दरी और आधुनिक विचारों की महिला थी। हम सब उनकी चाल ढाल, पहनने ओढ़ने का ढंग और तौर तरीक़ों के दीवाने थे। हर एक की कोशिश होती कि मिस मैसी के लहज़े में बात करे, तेज़ी से चले और उनके जैसे कपड़े पहने। मगर सबको उनकी एक ही बात खटकती। वह था उनका कठोर अनुशासन। क़स्बे की लड़कियां स्कूल को भी घर समझती थीं। जिस मनमानी आज़ादी के साथ वह रह रही थीं वह मिस मैसी के ज़माने में सम्भव न थी, फिर भी हम सबमें उत्साह था, नया कुछ सीखने की चाह थी, इसलिए मिस मैसी के अनुसार बदलने की कोशिश जारी थी उस पर भी उनकी ओर से न प्रोत्साहन मिलता और न अपनत्व, उनकी निगाह में हमारे गंवारू तरीके कभी बदलने वाले न थे। किसी तरह के तालमेल के अभाव में हम सब भी ढीले पड़ जाते और काम जिस तेज़ी के साथ वे चाहतीं न हो पाता।

मिस मैसी के बहुत से काम छोटी बऊ के जरिए होते, वही उनका निजी काम भी करती और वही स्कूल के सारे काम निपटाती। पूरे स्कूल में वही अकेली दाई थी। कमेटी दूसरी दाई का खर्च उठाने को तैयार न थी। मिस मैसी को अपने अनुशासन पर भरोसा था इसलिए उन्होंने कहा वह सब ठीक कर लेंगी।

पर बऊ को बदलना आसान न था। दूसरी तरफ मिस मैसी थीं जिन्हें अपनी पसन्द के लोगों से ही बात करने की आदत थी। गांव की वेशभूषा ही उन्हें खिजा देती। वे छोटी बऊ को बिल्कुल सहन न कर पातीं उसे देखकर

मतली आती, उनका दबा हुआ गुस्सा उभर आता । ओफ ! इस पीले लहंगे और लाल दुपट्टे को तो हटाना ही है । हमेशा एक सी बोरिंग ड्रेस पहनकर आ जाती है । वह चिढ़कर कहतीं, "दरवाज़े के पास खड़ी होकर बात सुनो" । इस आदेश के साथ वह उसे बड़े स्कूलों के तौर-तरीक़े सीखने, साड़ी पहनकर आने और गंवारूपन छोड़ने की बात कहना न भूलतीं ।

यह सब सुनकर भी बऊ उनकी तरफ इस तरह देखती मानों वे स्कूल की प्रधानाध्यापिका नहीं कोई छोटी बच्ची हों जो ऐसी नासमझी की बातें कर रहीं हैं । कुछ देर बाद फिर इस तरह देखती मानों कह रही हो सब समझ जाओगी और धीरे से वहां से हट जाती । किसी दूसरे काम में लग जाती ।

हर दिन, हर बात पर बऊ को डांट पड़ती । मिस मैसी उसे निकालने की धमकी देती, पर वह दुष्ट तो जैसे गूंगी बन जाती । वह पथराई आंखों से मिस मैसी के चेहरे की रेखाओं को पढ़ने का असफल प्रयास करती । उसकी ढिटाई देखकर मिस मैसी और भी आपे के बाहर हो जातीं । क्या बऊ अपनी बेकार सी झूठी इज़्ज़त का लोभ छोड़कर मिस मैसी के पैर छू कर क्षमा नहीं मांग सकती थी ? और बड़े स्कूल की दाइयों की तरह साड़ी पहनकर आने का वादा नहीं कर सकती थी ? ऐसा करने पर मिस मैसी ज़रूर पिघल जातीं । पर बऊ ने तो ज़बरदस्त चुप्पी साध रखी थी ।

मिस मैसी का कहना था कि कोई भी टीचर आपस में और विशेष रूप से दाई से स्कूल टाइम में व्यक्तिगत बातें नहीं करेंगी । ऐसा करने से स्कूल का वातावरण खराब होता है और कर्तव्यों को पूरा करने में बाधा पहुंचती है। जबकि हमारा स्कूल स्कूल था ही नहीं वह तो सभी का घर था । लड़कियों का टीचर्स का और दाई का भी । सब एक दूसरे से बातें करें या न करें, परन्तु एक दूसरे से इतना जुड़े थे कि व्यक्तिगत कुछ था ही नहीं । सभी कुछ सभी का था। मिस मैसी जिस अनुशासन की अपेक्षा करतीं, वह इस क़स्बे के रहने वाली लड़कियों, टीचरों और दाई की कल्पना में भी न था । हां इतना अन्तर ज़रूर था कि जहां अध्यापिकाएं और छात्राएं मिस मैसी के अनुशासन को समझने की कोशिश में लगी थी वहीं बऊ की चुप्पी में एक मूक विद्रोह छिपा था ।

परीक्षाएं निकट आ रहीं थी, सब पढ़ने पढ़ाने में लगे थे छोटी बऊ को तीन दिन से बुख़ार आ रहा था । हमेशा की तरह उसने छुट्टी न ली थी । जैसे तैसे थोड़ा बहुत काम जो ज़रूरी था कर लेती और वहीं ज़मीन पर लेट जाती। तीन दिन से घर भी न गई थी, वहीं स्कूल की कोठरी में सो जाती । सोचती जरा चलने की ताक़त आए तो घर जाऊं । फिर घर जाऊंगी तो इतनी दूर आया न जायेगा ।

जब तीन दिन तक सास घर न पहुंची तो उसकी बहू दुलारी खाना

लेकर स्कूल चली आई । दुलारी सास को खाना खिला, हालचाल पूछ ज्यों ही कोठरी के बाहर निकली, उसी-वक्त मिस मैसी राउंड लेती हुई कोठरी के सामने आ पहुंचीं । "तू कौन है ? बिना पूछे स्कूल के अन्दर कैसे चली आई ?"

दुलारी ने घबराकर कहा, "अम्मा कूं देखिबे चली आई, तीन दिना से मांदी हैं ।"

मिस मैसी ने तेज़ आवाज़ और तिरस्कार भरे लहजे में कहा, "यह अस्पताल नहीं कि रोटी बांधी और देखने चल दी । बीमार है तो घर ले जा । नौकरी क्यों नहीं छुड़वा देती ।"

छोटी बऊ में अचानक न जाने कहां की ताक़त आ गई । वह झपटकर बाहर आ गई और चिल्ला कर बोली, "मिस साब हम कोई बिक थोरई गए हैं। हम गरीबन के कुछ पानी नांय है ? मेई बऊ त्याई नौकर नाय है । नौकरी हमने करी है, जो कुछ कहनो होय हम सूं कहियो ।"

बऊ का चेहरा लाल पड़ गया था, वह कांप रही थी, जिस अपमान को वह सात महीने से पीती आई थी, जिस आत्मा की आवाज़ को वह आज तक दबाती आई थी, वह आवाज़ आज मौक़ा पाकर फूट पड़ी थी । उसका कुचला हुआ आत्म-सम्मान जीवित हो उठा था ।

बऊ का विनम्र रूप मिस मैसी को हमेशा चिढ़ाता था पर आज के रौद्र रूप की तो कल्पना भी न की थी, यकायक वे डर सी गई थी, तुरंत आफिस में आईं और दाई को स्कूल से निकालने का आदेश लिखकर, तुरंत चपरासी के हाथ चेयरमैन साहब के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया ।

बऊ ने खुद शाम को आने को कहकर दुलारी को घर भेज दिया और कोठरी में आकर लेट गई, उसने एक गिलास पानी पिया कि जी ठंडा हो जाय, पर उसे अपने ऊपर क़ाबू न रहा, न जाने कबका भूला बिसरा याद आ गया । ठाकुर जिन्दा थे, वह घर की सबसे छोटी नवेली बहू थी सभी 'छोटी बऊ' कहकर पुकारते । बऊ के ठाकुर हमेशा बड़े ज़मीदार ठाकुर के साथ रहते, शिकार खेलने जाते थे या कहिए ज़मीदार को शिकार खिलाते, अपनी जान ख़तरे में डालते, यही शिकार एक दिन बऊ के छोटे ठाकुर की जान ले बैठा । बहुत रोई पीटी, फिर एक दिन शान्त हो गई । घर के सभी लोग दुखी जानकर उसे प्यार करते .... फिर कैसे चचेरे देवर के साथ घुलती मिलती गई, कहां जा रही है ? क्या कर रही है ? आगे क्या होगा ? यह सब सोचने का होश ही न रहा बस उड़ी जा रही थी, इसी में उसने देवर की थाती सम्हाल ली, तब होश आया। ये क्या हो गया ? देवर ने आंखें फेर ली तो उसके दिए अभिशाप को वरदान बनाने के विचार से उसने गांव ही छोड़ दिया । अपना लहंगा, दुपट्टा दोनों गांव की नदी के किनारे रख कर चली आई थी । सारा गांव समझा डूब मरी । पर

बऊ से मरा नहीं गया । मेहनत मजूरी की, मान अपमान उठाया, बेटा जन्मा फिर उसे पाला पोसा, पढ़ाया लिखाया, शादी ब्याह किया और अपनी दुनिया ही बसा ली, जिसमें थीं स्कूल की लड़कियां, बेटा माधव और बहू दुलारी । 'भौत कट गई' बऊ ने ठंडी सांस भरी ।

छुट्टी का घंटा बजा, वह चौंककर उठ बैठी । सुबह की घटना आंखों के सामने घूम गई । मन में आया आज से ही नौकरी छोड़ दे और अपना सामान उठाकर घर चली जाये । माधव रोटी-पानी तो देगा ही । पर तुरंत ही उसे उन बच्चियों का ध्यान आया जिन्हें वह सुबह लिवा कर लाई थी, उन्हें तो घर पहुंचाना उसका काम है, वह तो करेगी ही ।

बऊ उठकर बाहर फाटक के पास खड़ी हो गई सब लड़कियां एक-एक कर उसके पास इकट्ठा होने लगीं, जब सब लड़कियां आ गई तो बऊ चल दी। पर आज उसका ध्यान कहीं और था । विचारों का तांता अभी टूटा न था । न तो किसी छोटी बच्ची की उंगली पकड़े थी और न ही इधर-उधर जाती लड़कियों को सड़क के किनारे चलने की हिदायत दे रही थी, बस यंत्रवत चली जा रही थी ।

एक इक्केवाला चिल्लाया, "ए लड़की हट, मरना है क्या ?" बऊ जैसे सोते से जग पड़ी और अपनी पूरी शक्ति के साथ लड़की को बचाने के लिए इक्के की तरफ दौड़ी । बऊ की आंखों के सामने अंधेरा छा गया । घोड़े की लात खाकर बऊ गिर पड़ी । वहां कोई लड़की न थी जिसे वह बचाती । उसके स्कूल की सभी लड़कियां सड़क के किनारे किनारे चल रही थी, इक्के के सामने कोई और लड़की थी जो दही लेकर घर जा रही थी और इक्केवाले की आवाज़ सुनकर सड़क के एक तरफ हो गई थी । पर बऊ को तो गिरना था और वह सड़क पर गिर पड़ी । इक्का रुका । भीड़ जमा हो गई, सब अपनी-अपनी कह रहे थे । एक सज्जन ने एक बड़ी लड़की से कहा कि सबको सम्हाल कर अपने अपने घर जाओ, दाई को अस्पताल ले जाते हैं । बऊ को लोगों ने इक्के पर चढ़ाया, किसी ने कहा, "बेहोश हो गई है" कोई कह रहा था, "कौन जाने, लगता है हार्टफेल हो गया हो ।" इक्का अस्पताल की तरफ चल दिया । एक आदमी दौड़ा स्कूल की बड़ी गुरुजी को ख़बर देने और बताने कि क्या हुआ ।

मिस मैसी अपने आफ़िस में बैठी थी । चपरासी उनके आदेश पर चेयरमेन के दस्तखत करवा कर ले आया था । वे सोच रही थीं, "ओफ ! आख़िर उस 'छोटी बऊ' ख़िताब वाली दाई से मैंने छुटकारा पा ही लिया ।"

●●●

मन भटक ही जाता है

वे बड़ी देर से कुछ असंगत बातें कह रहे थे, फिर कहते कहते वे अधिक भावुक हो उठे, "मैं चाहता हूं तुम्हें ज़िन्दगी भर संगीत सिखाता ही रहूं ... अगर कहीं तुम्हारी वीणा में मेरे लिए एक भी कोमल स्वर हो ... तो मेरी साधना सफल है ... । तुम मेरी सिद्धि हो, मैं तुम्हारे लिए जीवनभर साधना करता रहूंगा, अनवरत् साधना । मेरे और अपने संगीत के लिए अगर तुम्हें बलिदान भी करना पड़े ... ।"

सुख और समृद्धि के परकोटे, किसी का मन नहीं बांध पाते । बच्चे सो रहे थे । पति बाहर से जल्दी लौटते नहीं । अकेले बैठो तो भूली बिसरी बातें याद आ ही जाती हैं ।

मां ने अभी पूरी बात सुनी भी न थी, उसकी आंखों में खून उतर आया। मैं डर से कांप गई । ज़बान तालू से चिपक गई और आगे एक शब्द भी मुंह से न निकला ।

मां ने कड़क कर पूछा, "फिर तुमने क्या कहा ?"

मैंने किंचित रोष से कहा, "मैं क्या कहती ? मैं तो उनकी पूरी बात सुने बग़ैर ही उठ कर चली आई ।"

मां से बात पिता जी तक पहुंची और पिता जी से शायद उन तक । मां बड़बड़ाती, 'देख लिया न ? मैं तो पहले ही कहती थी, ये तो तुम्हारी ही अकल पर पत्थर पड़ गए थे । विश्वास का तो ज़माना ही नहीं रहा ।' लेकिन पिता जी एकदम चुप रहते । न मां की बातों का जवाब देते, न मुझसे कुछ पूछते न कुछ कहते । शायद पिता जी ने किसी से भी कुछ न कहा था । इन बातों का नतीजा जो कुछ होना था वही हुआ । मेरा संगीत सीखना बन्द हो गया ।

कुछ दिनों बाद बात आई गयी हो गई । पर मैं चैन से न सो पाती। मन में अनजाना डर समाया रहता और इसी डर में सपने देखती . . . मैं एक दुर्गम पथ पर चलती जा रही हूं । जैसे जैसे आगे बढ़ती हूं, जंगल घना होता

जाता है । मेरे पैर लहूलुहान हो गए हैं, पर चलना ही एक मात्र उपाय है । रुकती हूं तो जंगली जानवरों की डरावनी आवाज़ें कलेजा दहलाती हैं । दूर कहीं नदी बहती जान पड़ती थी । कल कल की मधुर ध्वनि और धीमा धीमा मादक संगीत, मुझे अपनी ओर खींचे ले रहा था । आख़िर नदी का किनारा आ ही गया, साथ ही एक तेज रोशनी के साथ मादक संगीत रुक गया । भारी चका चौंध के बाद जब आंखें खुली तो आमने का दृश्य देख कर कांप उठी । एक तेजस्वी जटा जूट धारी पुरुष, मुण्डों की माला पहने, हाथ में खून से भरा खप्पर लिए .... मुझे सब कुछ वैसा ही लगा जैसा किताबों में तांत्रिकों के बारे में पढ़ा था .... तांत्रिक ने चुल्लू भर खून मेरे ऊपर छिड़क दिया । गन्ध वाली चर्बी जला कर मेरी आरती उतारी और पैरों पर गिर पड़ा, "देवि मैं संगीत का साधक हूं । मेरे गुरु ने बताया था कि जिस दिन आपके जैसे लक्षणों वाली कन्या के दर्शन होंगे, उस दिन साधना की चरम सीमा होगी । देवि मेरी पूजा स्वीकार करें तभी मेरी साधना सफल होगी । मुझे सिद्धि मिलेगी । ये मेरी सिद्धि, मेरी साधना मुझे तुम्हारा बलिदान चाहिए ।"

बलिदान ! मैं चीखती हूं ।

आंख खुल जाती है । संगीत साधक, तांत्रिक, यह सब क्या है मैं नहीं जानती । पर मुझे अब किसी भी संगीत साधक से डर लगता है । सच ही वे मुझे तांत्रिक से लगते । मन में डर समाया रहता कि उन्हें मेरा बलिदान ....। और मैं अपना बलिदान नहीं दे सकती ।

तांत्रिक कहिए या संगीत साधक, जब वे हमारे छोटे से शहर में आए तो उनके बारे में तरह तरह के चर्चे थे । कुछ लोग कहते कि पहले वे साधारण स्थिति के एक सम्मानित पुरुष थे । उनके विवाह के कुछ वर्षों बाद ही उनको ग़बन के अपराध में सात वर्षों की क़ैद हुई । इसी बीच पत्नी ने दूसरा विवाह कर लिया । दोनों प्रकार के सामाजिक अपमान और दुखद प्रसंगों को भुलाने के लिए वे दिन रात संगीत साधना में लगे रहते हैं । साधना जेल में ही आरंभ कर दी थी । जेल में मार खाई, एकान्त वास सहा पर संगीत साधना न छोड़ी इसी तरह गाते, मार खाते जेल जीवन के सात वर्ष बीत गये ।

कुछ भी हो, पर वे अपने विगत जीवन के बारे में कभी कोई बात न करते । इतनी फक्कड़ हंसी हंसते कि दीवारें हिल उठतीं । ऐसे दर्द भरे शेर सुनाते कि कलेजा बिंध जाये । उनकी इन्हीं बातों ने मेरे पिता का दिल जीत लिया था । वे मेरे पिता के मित्र बन गए । वे गाते तो लगता सारी दुनिया दर्द में डूब गई है । मैं तो बस उनके दर्दीले कण्ठ पर ही मुग्ध थी । अपने पिता

के मित्र, मेरे गुरु, उनके लिए मेरे मन में अपार आदर और असीम श्रद्धा थी । मन लगा कर संगीत सीखती, खूब मेहनत से रियाज़ करती और दिन रात संगीत की दुनिया में खोई रहती जबकि मेरी सहेलियां जवानी की उमंगों और भविष्य के सुख स्वप्नों में खोई रहती ।

पर ओह ! उस दिन .... । उस दिन मैं इतनी घबरा गई थी कि कैसे क्या हुआ कुछ भी याद नहीं । वे बड़ी देर से कुछ असंगत बातें कह रहे थे, फिर कहते कहते वे अधिक भावुक हो उठे, "मैं चाहता हूं तुम्हें ज़िन्दगी भर संगीत सिखाता ही रहूं ... अगर कहीं तुम्हारी वीणा में मेरे लिए एक भी कोमल स्वर हो ... तो मेरी साधना सफल है ... । तुम मेरी सिद्धि हो, मैं तुम्हारे लिए जीवनभर साधना करता रहूंगा, अनवरत् साधना । मेरे और अपने संगीत के लिए अगर तुम्हें बलिदान भी करना पड़े ...।" और भी न जाने क्या क्या कहते रहे। धीरे धीरे बात मेरी समझ में आई । तन बदन में आग लग गई । आंखों से चिनगारियां छूटने लगीं । सबसे ज्यादा दुख तो इस बात का था, कि जिस व्यक्ति का मैं इतना आदर करती थी, उसी ने ऐसा दुस्साहस किया । जी में आया कि तानपूरा पटक कर चली जाऊं और साफ़ साफ़ कह दूं कि आज के बाद से मुझे मुंह मत दिखाना । मुंह से इतना निकला, "आपको मुझसे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए। आप मेरे पिता के मित्र, मेरे आदरणीय ...." गला भर आया । मैं अपमान और क्षोभ से जली जा रही थी । उनके सामने बैठना असह्य था । उठ कर अन्दर आने लगी तो फिर एक अनुरोध सामने आया, "ये .. दुर्बलता के क्षण .. किसी के जीवन की निधि हो सकते हैं, इन्हें लुटा न देना।" अब उनकी आंखों में आंसू आ गए थे । भरसक रोकते हुए बोले "मैं यहां से चला जाऊंगा, एक बात रख लेना, किसी से कुछ कहना नहीं ।"

अब कुछ सुनने की ताब न थी । "मैं मां से कुछ भी नहीं छिपाती" कहती हुई अन्दर चली आई ।

यही बात जिसे मैंने न छिपाने को कहा था, जब मां को बताई तो वह आपे के बाहर हो गई । और इसी का नतीजा था कि मेरे लिए वर की खोज बड़े ज़ोरों से होने लगी । अच्छा तो है । हर लड़की का विवाह होता है । मेरा भी होगा, और होना भी चाहिए । जब से विवाह की बातें होने लगी थी, मैं उन्हीं में उलझी रहती । तांत्रिक का सपना न आता, पिछला डर छूटता जा रहा था। अब तो दिन में ही जागते हुए सपने देखती, तांत्रिक नहीं कोई राजकुमार आता। रोम रोम सिहर जाता । मोहक सपने और सुहानी ज़िन्दगी चली जा रही थी ।

विवाह के बाद की तीसरी या चौथी रात थी याद नहीं । पति विवाह

पूर्व के प्रसंगो को बड़ा रस ले ले कर बता रहे थे कि कब किसने, कैसे प्रेम निवेदन किया । सब सुन यकायक एक बात याद आ गई थी । बात ओठों के पास आकर रुक गई । मन न जाने कैसा हो गया । किसी की दुर्बलता के क्षण, इतने हल्केपन से बताने को जी न चाहा ।

इस बात को भी वर्षों बीत गए । पहले की सुहानी ज़िन्दगी ने कितने ही मोड़ लिए । कभी इतने वेग से बही कि होश ही न रहा और कभी इतनी गतिहीन कि मौत को भी तरस आए । वर्षों के संजोये सपने कांच के ग्लास की तरह टूटे । पहले तो दुर्गम पथ पर चलने के सपने देखती थी, पर अब तो ज़िन्दगी सचमुच एक दुर्गम पथ जान पड़ती । पैरों में छाले पड़े हों या खून झलके, चलना तो है ही । इसीलिए चलती जाती हूं, बराबर चलती जाती हूं पर सपने की तरह न नदी का किनारा आता है न मादक संगीत सुनाई देता है और न ही बलिदान मांगता कोई तांत्रिक ...।

कहाँ होगा वह तांत्रिक ? एक एक कर कितनी बातें आंखों के सामने घूम गईं । ओह ! इतने दिनों बाद, आज अचानक ही तांत्रिक की स्मृतियां इतनी सजग हो गई कि जी चाहा अठारह वर्षों का उपेक्षित, धूल भरा तानपूरा उठा कर छाती से लगा लूं । कितनी कसक थी उस कलेजे में इसका अनुमान मैं आज लगा पाती हूं तब क्या लगाती । वह दर्दीला कंठ । कुछ भी तो न जानती थी तब दर्द के बारे में, कि कैसा होता है । उस समय तो मेरे हृदय में इतनी भी जगह न थी कि उनका व्यवहार, बातचीत, अनकही रह जाती क्या अब भी मैं मां से कुछ नहीं छिपाती ? नहीं ! नहीं ! अब मुझे तान पूरा छूने का कोई अधिकार नहीं । नहीं छुऊंगी अब तानपूरे को ।

आज इतने दिनों बाद न जाने कैसा पछतावा भर गया मन में । मन में एक अडिग विश्वास जाग पड़ा कि वे मुझे आज भी भूले नहीं है । जब भी मेरे परिवार के लिए कोई शुभ अवसर आयेगा तो एक गुमनाम बधाई कार्ड या तार ज़रूर आयेगा । उनका स्नेह, आशीर्वाद सदा मेरे साथ रहा है, और रहेगा। न जाने किस अधिकार से ये सब अपेक्षाएं कर रही थी । सोचा हो सकता है अपने अंतिम समय में वे मुझे बुलाएं या ... किसी दिन पति बाहर से आकर कहें कि तुम्हारे पुराने टीचर जो तुम्हें म्यूज़िक सिखाते थे अस्पताल में हैं । तुम्हें याद किया है .... कैंसर ! उफ .... इतनी पीड़ा ... जीवन भर पीड़ा ही झेली इस व्यक्ति ने ... इतना दुख ! हे भगवान मुझसे नहीं देखा जायेगा । मुंह का कैंसर, बांए गाल में गल गल कर हुआ बड़ा छेद । खून । मवाद । मुझे यह सब देखना बदा था । मैं कुछ भी न कर सकी तुम्हारे लिए । अंतिम समय सेवा

का मौका मिल जाता तो ... पर अब तो वे जा रहे हैं । हमेशा हमेशा के लिए ... मैं सावधानी से उन्हें जांघ पर लिटा लूंगी और आंखों में पश्चाताप के आंसू भर कर पूछूंगी, "मेरे आदरणीय गुरु, मेरे पिता के मित्र, मेरे प्रथम ... मैं तुम्हारे लिये क्या करूं ?"

लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होगी । वे कुछ भी न बोलेंगे, उनका सर मेरी गोद में एक ओर लुढ़क जायेगा । मैं साफ साफ सुन रही हूं, कोई एक शेर गुनगुना रहा है :-

सुने जाते न थे तुमसे, मेरे दिन रात के शिकवे ।
कफ़न सरकाओ, मेरी बेज़बानी देखते जाओ ।।

मुड़ कर देखती हूं, पति ही गुनगुनाते आ रहे हैं, "अरे ! क्या तुम रो रही थी बैठी बैठी ?"

पति का स्पर्श पाते ही जाग जाती हूं और सहज बनने की कोशिश करते हुए कहती हूं और आप किसे बुला रहे थे बेज़बानी देखने के लिए । पति आदत के अनुसार ठहाका लगाते बाथरूम में चले जाते हैं ।

कितनी देर से बैठी, क्या क्या सोच गई । कितने आंसू बह गए मालूम नहीं । आंखें पोंछ कर उठ खड़ी होती हूं । एकदम सहज, संतुष्ट गृहणी की तरह । न जाने किसे सफ़ाई देती हूं, अकेले बैठो तो, भूली बिसरी बातें याद आती ही हैं । मन ही तो है, कभी भटक जाता है ।

●●●

§ निर्णय §

मुझे दिव्या को छोड़कर कैरियर बनाना, अमानवीय लगता है। बेटी के साथ अन्याय लगता है । पर मुझ पर पति का दबाव इतना अधिक है कि दृढ़ता से उनकी आंखों में आंखें डालकर 'नहीं' कह ही नहीं पाती । उनकी नाराज़ी, उदासीनता का डर मुझे भीतर तक कमज़ोर बना देता है । दूसरी ओर उनका सान्निध्य भी मुझे बल नहीं देता । पति के गौरवशाली व्यक्तित्व की गरिमा में दब कर रह जाती हूं । मुझे अपने ढुलमुल चरित्र और दृढ़ताविहीन व्यक्तित्व से घृणा होने लगती है ।

क्या औरत गीली मिट्टी का एक गोला है ? जिसके हाथ यह गोला लग जाता है वह उसे मन चाहा आकार देने को व्यग्र हो उठता है । कम से कम पिछले तीन सालों से, जब से इस घर में ब्याह कर आई हूँ, यही देख रही हूँ । सास ससुर, अपनी मान्यताओं और मूल्यों को मेरे मन में पैठा कर आदर्श बहू बनाना चाहते हैं । परम्पराओं का बोझ मुझे ही उठाना है सिर्फ मुझे यह बताने से नहीं चूकते । और पति, उनकी कसौटी पर मुझे शत-प्रतिशत खरा उतरना ही है यह तो सभी मानते हैं ।

मां बाप ने भी चलते समय यही सीख दी थी "सबकी ख़ुशी में ही अपनी ख़ुशी समझना" । इसीलिए ससुराल में जो भी करती हूँ सबको खुश करने के लिए, यहां तक कि मैं बेटा भी इसलिए चाहती थी कि बेटे के जन्म से घर के सब लोग ख़ुश होंगे । मेरी अपनी इच्छा न कोई महत्त्व रखती है और न मेरी अपनी खुशीं ।

सास ससुर की इच्छानुसार ढलते-ढलते मैं यह भी भूल गई हूं कि यहां आने से पहले मेरा अपना कोई निजी आकार था भी या नहीं ? शायद नहीं, शादी से पहले जो आकार था, वह तो मेरी मां का सपना था, जिस सपने को मां ने मुझमें साकार किया था । अगर यह सब सच नहीं है तो जब आज निर्णय लेने की घड़ी है । दृढ़ता से हां या ना कहने की बेला है तो मैं द्वन्द में क्यों फंसी हूँ ।

यह सच है कि किसी बात के बारे में निर्णय लेने में इतनी कठिनाई

मुझे कभी नहीं हुई । हिचक का कारण है मेरी बेटी दिव्या ।

दिव्या मेरे आसपास ही खेल रही है । एक साल पांच महीने की नन्हीं जान को भी आभास है कि उसकी मां उदास है, चिन्ताग्रस्त है । अनमनी है, दुखी है । तभी तो वह हर तरह से मुझे रिझाने की कोशिश कर रही है ।

बालकनी से बाहर झांक कर दिव्या सब्ज़ी वाले की नक़ल में पुकारती है "मतल, टम्पा, जोबी, आलू" मुझे हंसी आ जाती है इस शाम के धुंधलके में इसे सब्ज़ी वाला कैसे याद आ गया ?

मेरे हंसने से दिव्या का साहस बढ़ता है वह मुझे ख़ुश करने की एक कोशिश और करती है । अपनी छोटी सी उंगली को मेरी बांह में छुआ कर कहती है "जे मम्मा !" फिर मेरी नज़रों में नज़रें डालकर, अपनी गर्दन टेढ़ी करके अपने गाल पर उंगली कोंच कर कहती है "जे डिब्बा ।" मेरी 'डिबिया' कहते हुए मैं लपक कर उसे गोद में उठा लेती हूं । मेरी आंखों में जो आंसू भरे थे उनमें से एक बूंद आंख की कोर में अटकी रह गई थी। दिव्या मेरी आंखों में झांकर्ती है, वह एकदम चुप है आंसू देखकर कुछ उदास, फिर धीरे से उस आंख में अटकी बूंद को छूती है और उंगली से ही उस पानी को गाल पर फैला देती है । मेरी बिटिया अपने ही ढंग से मेरे आंसू पोंछती है ।

दिव्या का अनुराग देखकर मैं और भी विकल हो उठी । प्रश्न फंन उठाकर खड़ा हो गया । जो सवाल मुझे व्यथित किए है वह शायद दूसरों की नज़र में इतना बड़ा न भी हो। सवाल सिर्फ़ इतना ही है कि मैं दिव्या को अपनी सास के पास छोड़कर, विदेश पढ़ने के लिए जांऊ या न जांऊ ?

पति की राय में मुझे जाना ही चाहिये । ऐसे मौक़े बार-बार नहीं आते। किसी तरह का मोह या भावुकता मेरा कैरियर चौपट कर देगी । कैरियर बनाने की यही उम्र है । बच्चों के लिए तो सारी ज़िन्दगी करना ही है । पति मेरे विदेश जाने में बड़ी-बड़ी सम्भावनाएं देख रहे हैं । आज नहीं तो कल वह भी जायेंगे ही । दिव्या या तो अपनी दादी के पास रहेगी या फिर बुला लेंगे उसे बाद में, जब हम वहां सैटिल हो जायेंगे, सोचेंगे ।

जैसे विदेश में जाकर बस जाना ही जीवन का चरम लक्ष्य हो ।

मैं फिर उलझ गई, दिव्या को गोद से उतार दिया । बत्ती जलाई और फिर उसी कुर्सी पर बैठ गई । दिव्या ने मेरी ओर देखा, फिर पास में रक्खी खिलौनों की टोकरी उलट दी ।

टोकरी उलटते ही बच्ची के मन का विषाद घुल गया, वह दोनों हाथों

से मगन होकर खिलौनों को बिखेरने लगी । खिलौने बिखराते बिखराते उसे कुछ याद आया, मेरी साड़ी खींच कर बोली 'मंकी', 'मंकी' ।

"ओफ़्फ़ो ! मुझे नहीं मालूम कहां है तेरा मंकी ।" मैंने दिव्या को झिड़क दिया । वह रोने जैसी हुई, फिर कुछ सोच कर दूसरे खिलौनों से खेलने लगी। वह अपने खिलौनों को बहुत प्यार करती है । आनन्द में निमग्न दिव्या जब खिलौनों से खेलती है, तो एक-एक खिलौना उसके लिए प्राणमय हो उठता है, देखने वाले को भी ऐसा भास होता है कि खिलौने सजीव होकर दिव्या के साथ नाच रहे हैं । उसके लिए कल्पना और सच का अन्तर मिट जाता है । दिव्या के संसार में दिव्या खुद है और उसके खिलौने हैं । खिलौने उसके हैं, सिर्फ उसके । उसके और खिलौनों के बीच तीसरा कोई नहीं ।

पर मेरी दिव्या, सिर्फ़ मेरी नहीं । मेरे और उसके बीच में बहुत बड़ा संसार है, लाभ है, हानि है, किसी की नाराज़ी है, किसी की ख़ुशी है । दिव्या सिर्फ मेरी नहीं, मैं उसके बारे में मन चाहा निर्णय नहीं ले सकती । तभी तो आज सोच-विचार की नौबत आई है ।

मुझे दिव्या को छोड़कर कैरियर बनाना, अमानवीय लगता है । बेटी के साथ अन्याय लगता है । पर मुझ पर पति का दबाव इतना अधिक है कि दृढ़ता से उनकी आंखों में आंखें डालकर 'नहीं' कह ही नहीं पाती । उनकी नाराज़ी, उदासीनता का डर मुझे भीतर तक कमज़ोर बना देता है । दूसरी ओर उनका सान्निध्य भी मुझे बल नहीं देता । पति के गौरवशाली व्यक्तित्व की गरिमा में दब कर रह जाती हूं । मुझे अपने ढुलमुल चरित्र और दृढ़ताविहीन व्यक्तित्व से घृणा होने लगती है ।

मुझे फिर उलझनों में उलझा जानकर दिव्या फिर मेरे पास आ गई, और छः इंच की छोटी प्लास्टिक की गुड़िया दिखा कर बोली 'निन्नी' , 'निन्नी'।

दिमाग़ इतना परेशान था कि मैंने दिव्या की बात पर ध्यान ही नहीं दिया । दिव्या ने गुड़िया को अपने कलेजे से लगा लिया और झूम झूम कर ऊं ऊं ऊं की सस्वर लोरी गा गा कर अपनी गुड़िया को सुलाने लगी ।

मातृत्व की गरिमा से मंडित होकर जन्मी है मेरी बेटी दिव्या । मुझसे तो कहीं अच्छी है मेरी बेटी ।

गुड़िया को सुलाते-सुलाते खुद दिव्या की आंखें भी झपकने सी लगी।

मैं उसे उठाकर अंदर कमरे में आ गई । बत्ती जलाई, बिस्तर झाड़ा और दिव्या को लेकर लेटने की तैयारी कर रही थी, कि दिव्या पलंग के नीचे

झांककर खुशी से चिल्ला उठी 'मंकी' 'मंकी' । बाहर जिस मंकी को खोज रही थी, वह पलंग के नीचे धूल भरे फर्श में लोट रहा था । अक्सर दिव्या मंकी को लेकर ही सोती है । आज न जाने कैसे दिव्या से बिछड़ कर, यहां पड़ा धूल चाट रहा था ।

दिव्या ने धूल भरे मंकी को बिस्तर पर लिटा दिया और खुद भी पलंग पर चढ़ गई।

अभी अभी अच्छा खासा बिस्तर झाड़ा था कि इस मंकी ने बिस्तर पर धूल ही धूल कर दी । मैंने मंकी को उठाकर जमीन पर फेंक दिया, "छिः गन्दा है मंकी ।"

दिव्या बिफर उठी, फुर्ती से पलंग से उतरी और मंकी को उठा कर अपने से चिपका लिया । मुझे हंसी आ गई "फेंक दो मंकी को, गन्दा है ।"

दिव्या ने मुझे रोष से भरपूर नज़र देखा दृढ़ता से मंकी को चिपकाए-चिपकाए बिस्तर पर लेट गई और मंकी को भी लिटा लिया ।

मैं चित्रवत् सी बेटी के क्रिया कलाप देख रही थी एक दम से मस्तिष्क में बिजली सी कौंधी । मन पुलक उठा । मेरी सुकुमार बेटी की दृढ़ता ने मेरी आत्मा को छू लिया ।

दिव्या अपना मंकी हरगिज़ नहीं फेंकेगी । और उसकी मम्मा ? वह भी दिव्या को छोड़कर कहीं नहीं जायेगी ।

मैं जिस निर्णय को लेने में पांच दिन से परेशान थी, वह पल भर में ले लिया गया था ।

●●●

काली, गहरी, डरावनी यमुना

~~~~~~

यमुना की ऐसी प्रार्थना क़बूल हुई कि पूरी की पूरी यमुना ही बदल गई । दिन रात अपने ऑफ़िस के काम में लगी रहती, सहयोगी पुरुष मित्रों के साथ घूमती, फिरती आज़ाद रहने की कोशिश करती या दिखावा, यमुना ही जाने पर अब वह सभी औरतों से चिढ़ती है, सिर्फ़ पुरुष मित्र ही बनाती है और बदनामी से डरने वाले पुरुष को जूते की नोक से उठा कर फेंक देने का दावा करती है ।

बचपन में मैं एक बार पिता के साथ टहलते टहलते यमुना के किनारे गया था । शाम को झुटपुटे में ऊंचे ऊंचे कगारों के बीच बहती काली यमुना, मुझे विशाल नागिन की तरह लगी । मैं पिता के पैरों से लिपट गया । वह डर, वह अनुभूति मुझे आज भी याद है आज जब मैं अपनी सहयोगी मित्र यमुना को देखता हूं तो वह अनुभूति याद आ जाती है । यह काली यमुना गहरी तो है ही साथ ही कुछ डरावनी ज़रूर है । फिर भी वह तो बचपन की स्मृति है । इधर कुछ दिनों से मैं और यमुना मित्र हैं । एक ही जगह काम करने वाले दो सहयोगी। यमुना अक्सर मेरे पास आकर बैठ जाती है । कभी घूमने को कहती है । मैं भी अकेला हूं, समय कटता नहीं, फिर अपने कुलीग की बात टालूं भी तो कैसे ?

यमुना को पहाड़ी सड़कों पर घूमना बहुत पसन्द है । अपने ऑफ़िस की पुरानी जीप में हम दोनों घूमने निकलते । चढ़ाई के वक्त यमुना चुप बैठी रहती, मानो किसी होनी अनहोनी घटना या दुर्घटना की प्रतीक्षा कर रही हो, पर जैसे ही जीप ढलान पर आती उसका मन खिल उठता, बार बार कहती "तेज और तेज, क्या तुम डरते हो रमेश ?"

"डरने का क्या सवाल है, मेरा इरादा अपने को और तुम्हें खड्डे में गिराने का तो नहीं है ।"

"यही तो तुम नहीं जानते, गिरना, बहुत नीचे गिरना और तेज़ी के साथ गिरना ही तो मैं चाहती हूं । क्या दुनिया में कोई भी ऐसा पुरुषार्थी पुरुष
~~~~~~

नहीं जो मुझे गहरे खड्डे में ढकेल दे, ताकि मैं अतल गहराइयों में जीवन को देख सकूं । यहां समतल मैदान में तो मुझे जीवन नहीं मिला, मिली है घुटन, तड़पन । मर नहीं सकते तो जीने का भ्रम मत पालो ।"

"नीचे है मौत ! मौत से तो तड़पन घुटन कहीं अच्छी", मैंने अपनी बात पूरी करके यमुना की तरफ़ देखा । वह डूबते हुए सूरज को देख रही थी और मेरे अति निकट बैठी थी । कभी कभी उसकी यह निकटता मुझे बेचैन कर देती पर यमुना ऐसे बैठी रहती, जैसे कुछ हुआ ही न हो । मैंने डरते डरते पूछा "जानती हो ऑफ़िस में लोग, हम दोनों के बारे में क्या कहते हैं ?"

"कहने दो । मैं तो एक बदनाम लड़की हूं ही । हां तुम अपने बारे में सोच लो । मैं यह नहीं चाहती, कि मेरी वजह से, तुम्हारी या किसी की भी शराफ़त पर आंच आए ।"

"शराफ़त की बात नहीं । मैं कहता हूं यह अच्छी रही । गुनाह बेलज़्ज़त। लोगों को किसी के बारे में कुछ कहने से पहले सोच तो लेना चाहिए।"

यमुना एकदम गम्भीर हो गई "गुनाह की बात मत करो रमेश, आदमी क्या गुनाह करेगा । वह तो एक औरत ही कर पाती है । कभी छोटे से गुनाह से डरती है और कभी 'हत्या' जैसा गुनाह करने को सोचती है ।"

"हत्या"

"हाँ हाँ ! हत्या । खून से हाथ रंगने के बाद ही . . . . . . ।" कहते कहते जैसे यमुना होश में आ गई । यमुना ! काली, गहरी, डरावनी यमुना मुझे लोक कथाओं की उस राक्षसी के समान जान पड़ी, जो रानी के वेष में राजमहल में घुस आई थी और नित्य नियम से एक व्यक्ति को मार कर खा जाती थी ।

"कभी कभी तो तुम मेरी बातों से घबरा जाते हो । ऐसे देखते हो मानो मैं कोई राक्षसी . . . . . ।"

कहते हैं इसी राक्षसी यमुना ने जयन्त के सिर पर उस दिन हाथ रखा था जब जयन्त की मां मरी थी । जयन्त तो तब अच्छी तरह से मरने जीने का मतलब भी न जानता था । बस सब रो रहे थे वह भी रो रहा था । यमुना ने जो उम्र में बड़ी और समझदार थी, अपनी फ़्राक से जयन्त के आंसू पोंछे । पास बिठाया और आंखों ही आंखों में सांत्वना दी, माँ मर गई तो क्या हुआ यमुना तो है ।

जयन्त को यह सब अच्छा लगा और अनजाने में ही उसने अपने को यमुना को सौंप दिया । यमुना मन से बिना किशोरी बने, बिना युवती बने बस

मां बन गई । अपने से तीन वर्ष छोटे जयन्त की मां ।

जयन्त के पिता काम पर चले जाते और जयन्त यमुना के घर में या घर के इर्द गिर्द चक्कर काटता रहता । शाम को जब यमुना स्कूल से लौटती तो एक टॉफ़ी या लाई चने के लिए जयन्त यमुना से लिपट जाता । यमुना अपने नाश्ते और पैसों में आधा खुद खाती और आधा जयन्त को देती । फिर जयन्त यमुना के साथ ही स्कूल जाने लगा ।

कभी कभी यमुना परेशान हो उठती । हर घन्टे बाद जयन्त रोता हुआ उसके पास चला आता । कभी उसकी किताब खोती, तो कभी पेन्सिल, कभी स्लेट टूटती तो कभी कोई मार देता । जयन्त पिट कर रोता आता तो यमुना से भी मार खाता, "मरे तू क्या भुस खाता है, जो पिट कर चला आता है ।"

फिर जयन्त लड़कों के स्कूल में पढ़ने लगा । यमुना घर से स्कूल जाते समय, मां के दिए पराठों को दो जगह कर लेती और रास्ते में जयन्त को उसका टिफिन पकड़ा कर, अपने स्कूल को बढ़ जाती ।

एक दिन मां ने यमुना को समझाया, अब वह बच्ची नहीं रही, जयन्त भी छोटा बच्चा नहीं है १५ साल का हुआ । अब तेरा उससे ज़्यादा मिलना जुलना लोगों की आंखों में खटकने लगा है । सच ही यमुना अब बच्ची नहीं है। सब कुछ समझती है, जयन्त की आंखों के भाव भी पढ़ लेती है । मां की बातों ने उसे ऐसा परेशान कर दिया कि चार दिन तक जयन्त से न बोली । पर उसे ऐसे निस्सहाय छोड़े तो कैसे छोड़े ।

एक दिन मां कहीं गई थी । शाम का झुटपुटा था । जयन्त आया । यमुना उसे ऊपर लिवा ले गई । धीमे और गम्भीर स्वर में बातें करती रही । यह भी बताया कि मां ने यमुना से क्या कहा है । सुन कर जयन्त डर गया और मज़बूती से यमुना का हाथ पकड़ लिया । यमुना ने कहा, "क्यों लोग हम पर उंगली उठाएं, अब तू मन लगा कर पढ़, कुछ बन कर दिखा लोगों को । मैं तुझसे दूर थोड़े ही हूं।" जयन्त यमुना से लिपट कर फूट फूट कर रोने लगा था । यमुना ने प्यार किया, समझाया और कहा मैं तुझसे अलग थोड़े ही हूं ।

यमुना के आश्चर्य की सीमा न रही, एक ही रात में जयन्त कितना बड़ा हो गया । यमुना को देख कर इस तरह पलकें झुका लेता मानो दुनिया का ऊंच नीच सब समझता हो । सोचता मन लगा कर पढ़े नौकरी करे और कमाए तभी यमुना के जन्म से किए अहसानों को चुका सकता है । पर पढ़े कैसे ?"

इधर यमुना है कि पढ़ने में किसी को अपने से आगे ही नहीं आने देती। यमुना की मां जी जान से उसके लिए लड़का देख रही थी । कितने ही लोग यमुना को देखने आ चुके हैं, नाश्ता कर, यमुना के सर्टिफिकेट देख, गाना सुन कर चले जाते । किसी को काली कलूटी लड़की पसन्द न आती । यमुना, दिन ब दिन और काली, और गहरी, और डरावनी होती जा रही थी ।

इधर जयन्त लाख सोचता कि वह यमुना को दुखी न करेगा उसका किसी तरह बचा कर दिया पैसा बरबाद नहीं करेगा । जल्द ही कमाने लगेगा और यमुना का हाथ पकड़ लेगा, दिखा देगा कि यमुना को भी पसन्द करने वाला कोई है ।

दसवीं के बाद जयन्त की पढ़ाई रुक गई । उसके बाप के पास इतना पैसा नहीं कि अब उसे और पढ़ाए और बिठा कर खिलाए । जयन्त के भाग्य में ही पढ़ना न था, नहीं तो दो दो साल में एक दर्जा क्यों पास करता ।

यमुना की हताशा, निराशा जयन्त से नहीं देखी जाती, हार कर एक दिन उसने यमुना से कहा, "यमुना अब मेरी इतनी ही पढ़ाई से संतोष करो, जो कुछ भी बनना होगा तुम्हें पाने के बाद ही बनूंगा । इतना तो कमा ही लूंगा कि तुम्हें भूखा न रक्खूं, कभी अपनी तरफ भी तो देखो, कौन सा घुन खाए जा रहा है तुम्हें ।"

यमुना जयन्त को ऐसे भटकते हुए नहीं देख सकती । फिर वह भी अच्छी ख़ासी नौकरी कर रही है । जयन्त की पढ़ाई का खर्च बखूबी उठा सकती है । जयन्त क्या बोले ?

जयन्त का कालेज में नाम लिख गया । नई क़मीज़ें, बढ़िया पैन्टें, पान और सिगरेट के पैसे । अब क्या चाहिए ? पर जयन्त का मन पढ़ने में न लगता, यमुना के सामने मुंह खोलते डरता । यमुना एक चतुर मां की तरह, जयन्त से उसके, आने-जाने, सोने-बैठने, का हिसाब पूछती और खाने-पीने का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध करती ।

यमुना की देख रेख में बाइस का होते होते, जयन्त की ऐसी देह निखरी कि लड़कियां नज़र न हटा पातीं, उसकी बढ़वार देख बड़ी बूढ़ियां दांतों तले उंगली दबातीं । यमुना देख कर निहाल होती । लाखों में पहचान लेगी उसे। उसे अपनी शक्ल सूरत पर दुख न होता, "ऊंह ! मैं कैसी भी हूं, पर मेरा जयन्त तो बस एक ही है और जो कुछ भी है मेरा ही बनाया है ।"

जयन्त यमुना से बार बार कहता, "यमुना मैं तुम्हें पाकर ही कुछ कर

सकता हूं, ऐसे भटकते हुए नहीं ।" यमुना एक न सुनती वह नहीं चाहती कि जयन्त अपनी ज़िन्दगी बरबाद करे और साथ ही यमुना और जयन्त की प्रतिष्ठा पर बट्टा लगाए, अगर वह अभी जयन्त के साथ शादी कर लेगी तो समाज के लोग तरह तरह की बातें बनाएंगे । बस जयन्त सिर्फ डिग्री ले ले, फिर चाहे वह ज़िन्दगी भर उसे बिठा कर खिलाए ।

यमुना समझ ही न पाती कि जयन्त आख़िर चाहता क्या है ? कभी लगता कि वह यमुना के आत्म समर्पण का भूखा है । पर यमुना को अपनी इज़्ज़त, नेक नामी जान से भी ज़्यादा प्यारी है । उसके पास बुद्धि है, संयम है वह क्यों अपने और जयन्त के नाम पर बट्टा लगाए ।

जयन्त ने हार मान ली । वह अपने से भी मजबूर है, और यमुना का कहना भी नहीं कर सकता । वह क्या सोचता है, कैसे करता है यह अपने से ज्यादा पढ़ी लिखी, समझदार यमुना को कैसे समझाए ?

आजकल जयन्त सोते सोते चौंकता है, नींद उचट जाती है । वह यमुना को धोखा नहीं देना चाहता है । वह उसके एहसानों तले दबा है और चुकाना भी चाहता है यमुना को सुख भी पहुंचाना चाहता है । उससे कुछ छिपाना भी नहीं चाहता, पर वह सुने तब न । वह तो चाहता है कि यमुना के आगे आत्म स्वीकृति करके मन के बोझ से मुक्ति पा ले । पर जब भी कुछ कहना शुरू करता है वह रुपयों से उसका मुंह बन्द कर देती है । रुपयों का मुंह मत देखो जयन्त ! बस तुम अपनी ज़िन्दगी बना लो ।

ज़िन्दगी ! जैसे जयन्त के बनाने से बन ही जायेगी न ? वह तो यमुना की बनाई है यमुना की बिगाड़ी है, इसीलिए वह यमुना के पैसे से ऐश करता फिरता है । यमुना बिगड़े बालक की मां की तरह रोती झींकती, भला बुरा कहती और पैसों से जयन्त की जेब भरती ।

यमुना घर और मुहल्ले में अपने काम से काम रखती है इधर उधर की बातों की उसको ख़बर नहीं होती, फिर भी आजकल विधवा महाराजिन की सुन्दर लड़की के बारे में कुछ खुसुर पुसुर चल रही है । यमुना को हंसी आ गई अभी ज़मीन से उग ले, है ही कितनी बड़ी वह लड़की । ख़ैर यमुना को क्या लेना देना है ।

उस दिन वह सो कर ही उठी थी कि महाराजिन की कोठरी से एक नवजात शिशु के रोने की आवाज़ आई । मां ने बताया, महाराजिन की सुन्दर सी लड़की के लड़की पैदा हुई है । सारे मुहल्ले में हलचल मच गई । महाराजिन को हया न शर्म । सबसे कहती फिरती, लड़की बिलकुल जयन्त की तरह है ।

जयन्त उसका दामाद जो है । दोनों ने मन्दिर में जा के चुपके से शादी कर ली थी । पहले डर के मारे मुझे बताया न था । भला मैं क्यों बुरा मानूं, जब हीरा ऐसा दामाद मिले । फिर अपनी ज़ात, बिरादरी का है ।

यमुना ने सुना तो पैरों तले ज़मीन खिसक गयी । घड़ी भर को चैन न था । दो दिन तक काम पर न गई । छज्जे पर बैठी जयन्त का इंतज़ार करती रही । एक बार दिखाई तो दे । मैं भी तो पूछूं कि कौन सच्चा कौन झूठा ? आख़िर तीसरे दिन जयन्त दिखाई दिया । यमुना ने बुलाया तो सर झुका कर खड़ा रहा । यमुना और दुनिया वालों ने जो आरोप जयन्त पर लगाए हैं वह सब उसे स्वीकार हैं । इसलिए अपराधी की तरह जयन्त की गर्दन झुकी है, चाहे तो यमुना गर्दन काट दे, पर लड़की तो जयन्त की ही है ।

यमुना को रास्ता सूझा, "माना ! गलती इन्सान से ही होती है । क्या तुम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते । क्या सबूत है ?"

"जयन्त ! जयन्त ! कुछ तो सोचो ।"

"लेकिन यह सब झूठ मैं किसके लिए बोलूं ?" जयन्त ने हैरानी से पूछा ।

जयन्त की हैरानी पर यमुना फूट पड़ी, रोते रोते जयन्त के पैर पकड़ लिये, "यह भी पूछते हो जयन्त ? मेरे लिए ! अपनी यमुना के लिए, जिसने तुम्हारे पीछे अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर ली । अपना सब कुछ लुटा दिया । तुम्हारे पीछे मैंने दुनिया से मुंह मोड़ लिया और तुम पूछते हो, किसके लिए ?"

"मैं तुम्हारा कर्ज़दार हूं यमुना, इतना ऋणी कि ज़िन्दगी भर न चुका सकूंगा।"

"कैसी टेढ़ी बातें करते हो जयन्त । इतनी निष्ठुरता ? मैंने तुम्हें जो कुछ दिया, उसे केवल रुपये में आंकते हो ? मैं तुम्हारे पीछे बरबाद हो गई । तुम्हारे सिवा कुछ भी नहीं सोचा जयन्त । मेरी सोच तुम्हारे चारों ओर ही घूमती रही, पर तुम जिसके लिए इतनी बड़ी बदनामी उठाने को तैयार हो, उस लड़की ने तुम्हें क्या दिया है ? मैं भी तो जानूं ।"

"यह सब तुम्हारे जैसे, पढ़े लिखे, इज़्ज़तदार, शरीफ़ लोग नहीं समझ सकते । और न ही मैं समझा सकता हूं । अब तो जो कुछ होना था हो चुका है ।" जयन्त तेज़ी से बाहर चला गया ।

यमुना ने सर पीट लिया । चूड़ियां तोड़ डालीं, माथे की बिन्दी पोंछ डाली । और ज़मीन में लोट-लोट कर जयन्त की 'लाश' से लिपट लिपट कर

रोई । फिर शान्त होकर कमरे से निकली । उसके मन में एक बात थी । 'यमुना ! तू विधवा हो गई ।' बार बार इसी वाक्य को दुहराती, पर जयन्त की उपस्थिति उसे चैन से वैधव्य भी न काटने देती । जब जब जयन्त को देखती कलेजे में एक मरोड़ सी उठती । वह पीर से आकुल व्याकुल हो जाती । ऐसी ही व्याकुलता में उसने एक दिन जयन्त को लिख भेजा कि उसके ऊपर उसका बहुत सा रुपया क़र्ज़ है जल्द ही चुका दे । क़र्ज़ की अदायगी को लेकर वह दिन पर दिन उग्र होती जाती थी तरह तरह की धमकियां देकर जी की जलन निकालती, इसी क्रम में उसे सूझा कि अगर वह जयन्त की 'हत्या' करवा दे तो फिर महाराजिन और उसकी लड़की, सिर पीट कर ही रह जायेंगी । अपने इरादे से उसने जयन्त को भी आगाह कर दिया । जयन्त सिर झुका कर सब कुछ सुनता रहता । क्षत विक्षत यमुना को देख कर उसे सचमुच दुख होता था, पर उसके पास तो चुप का ही सहारा था ।

एक दिन फिर यमुना ने सर पीट लिया, क्योंकि अब वह जयन्त को ज़लील न कर सकती थी, जयन्त ने किसी दूसरी जगह नौकरी कर ली थी और अपनी बीवी तथा बच्ची को लेकर दूर नौकरी पर चला गया था ।

सब चले जायं पर यमुना को तो वहीं रहना है । यमुना को कुछ न सुहाता । ज़िन्दगी भार हो गई थी और जयन्त की याद उसे किसी तरह जीने न देती थी । वह दिन रात एक ही प्रार्थना करती कि जयन्त मुझे याद न आए।

यमुना की ऐसी प्रार्थना क़बूल हुई कि पूरी की पूरी यमुना ही बदल गई । दिन रात अपने ऑफ़िस के काम में लगी रहती, सहयोगी पुरुष मित्रों के साथ घूमती, फिरती आज़ाद रहने की कोशिश करती या दिखावा, यमुना ही जाने पर अब वह सभी औरतों से चिढ़ती है, सिर्फ पुरुष मित्र ही बनाती है और बदनामी से डरने वाले पुरुष को जूते की नोक से उठा कर फेंक देने का दावा करती है ।

आज भी उसे मालूम ही है कि जयन्त कहां पर है ? कितने बच्चों का बाप है ? रुपये पैसे से परेशान और क़र्ज़ में डूबा है । खुद यमुना ने जयन्त के बारे में कुछ छिपाया नहीं, उसकी नीचता, कायरता को वह हर पुरुष का गुण मानती है । पर जयन्त ने उसका जितना बुरा किया है, किसी और ने नहीं । उसकी हत्या करके वह खुद फांसी पर चढ़ जाए तो चैन मिले । यही चैन पाने वह हर साल उसी शहर में जाती है जहां जयन्त रहता है । अपने पुरुष मित्रों को बता कर जाती है कि अगर "पुलिस ने उसे गिरफ्तार न कर लिया तो वापस लौट आऊंगी ।"

यमुना की कहानी सुनते सुनते, मेरा गला खुश्क हो गया है थूक निगलते हुए पूछा, "क्या आजकल भी दक्षिण गई है जहां जयन्त रहता है ?"

"हाँ", कहानी कहने वाले ने स्वीकृति में सर हिलाया । "और क्या उसका इरादा . . . . . ।" मैंने डरते डरते पूछा । कहने वाला हंसा"कह कर तो यही गई है । पर डरो मत छुट्टी खत्म होने से एक दिन पहले ही लौट आयेगी । वह जयन्त को बना सकती है जीवन के २८ वर्ष इसी भ्रम में काटे अब वह जयन्त को बिगाड़ सकती है इसी भ्रम में अपना शेष जीवन काट देगी। सभी हंसते हैं उसके पागलपन पर ।"

कहने वाला भी हंस रहा था । पर मैं हंस नहीं सकता । यमुना को देख कर मुझे डर लगता है, काली, गहरी, डरावनी यमुना ।

●●●

आग

हरी की बहू ने जिस दिन से घर में पैर रक्खा 'सोलहो आना' घर की मालकिन बन गई । बूढ़ी सास और चारों ननदें उसके इशारों पर नाचती रहतीं । मन ही मन सास बड़ बड़ करती रहती और चारों ननदें जल भुन कर ख़ाक होती रहतीं । पर मालकिन तो मालकिन । हर दम सातवें आसमान पर चढ़ी रहती । माथे पर बल डाल कर चारों ननदों का काम बांट देती, एक चौका पोते, एक बर्तन मांजे, तीसरी पानी को जाये तो चौथी गेहूं साफ करे । बुढ़िया कमज़ोर थी इसलिए उससे कोई काम न करा कर, उसे खलिहान की रखवाली को भेज देती । सास खलिहान पर रहती ज़रूर थी पर हरी की बहू को न सास की कार्य क्षमता पर भरोसा था न नौकरों की ईमानदारी का ।

खलिहान घर के पिछवाड़े ही पड़ता था, सो बहू जब तब अटारी पर चढ़ कर देखती रहती कि कहीं कोई गेहूं तो नहीं चुरा कर ले जा रहा । जैसे ही किसी को गेहूं भर कर ले जाते देखती, सब लाज शरम थोड़ कर अटारी से ही चिल्लाती "अम्मा कहां है रे ? आंखीं फूटी हैं का ? देखो दुलारे गेहूं लिए जात है रेऽऽऽ ।"

यहीं सब सोच समझ कर तो उसने घर के पिछवाड़े ही खलिहान डलवाना शुरू किया । हरी तो बहू का बेदाम का ग़ुलाम हो गया । सब स्याह सफ़ेद की मालिक बहू, घर देखे, खेत देखे । हरी को तो बस नौकरी से मतलब, सुबह निकल जाता, शाम को घर लौटता ।

हरी की बहू की ज़बान में आग लगे । सास को कोस कोस कर उसकी आंखें फोड़ ही दीं । एक तो वैसे ही बुढ़िया पगली थी, अब आंखें और फूट गईं। बुढ़ापे में मिट्टी ख़राब हुई । सब बुढ़िया पर तरस खाते और हरी की बहू कपड़ा बर्तन, रुपया जोड़ने की जुटाने की फ़िक्र में लगी रहती । चार चार ननदों को भी तो घर से निकालना होगा । यह तो हरी की बहू का ही जिगरा था जो चारों ननदों को ब्याह दिया, हरी तो एक के लिए भी लड़का न खोज पाता ।

हरी की बहू ने भी चार बेटे जनमे । गांव वाले कहते "दिन भर बुढ़िया लड़कों को टांगे रहती है तब दो जून की रोटी नसीब होती है ।"

बुढ़िया सबसे छोटे लड़के को टांगे रहती, हरी की बहू घंटों में सारा

काम निपटा कर, मांग चोटी कर, पिढ़िया पै बैठी हुकुम चलाती रहती । सास देखती रह जाती, जिस काम में उसकी चारों बेटियां दिन भर जुटी रहतीं, तब पूरा करतीं, वही काम बहू बांए हाथ का खेल समझती ।

छोटी ननद गांव में ही ब्याही थी पर क्या मजाल कि बिना बुलाए घर में पांव तो रख ले । बुढ़िया बेटी के घर जाने को तरसती, उसके बच्चों को देखने जाना चाहती तो बहू साफ़ कह देती "बेटी के घर ज़्यादा आराम है तो वहीं जाकर रहो । यहां रहने की ज़रूरत नहीं ।"

बुढ़िया की हालत दिन पर दिन ख़राब होती जाती । कमज़ोर इतनी कि चलना दूभर । आंखों से ज़रा भी न सूझता । कोई हाथ पकड़ कर ले जाता, वरना पाख़ाने-पेशाब को बैठी रहती । कभी हरी को दया आती, बहू से दबे स्वर में कहता "ज़रा अम्मा को पहुंचा दिया करो, आज ठोकर खा कर गिर पड़ी ।"

बहू के तन बदन में आग लग जाती "बस यही एक काम है मेरे पास? तुम्हीं क्यों नहीं करते ? छोड़ दो नौकरी । करो मां की सेवा । मैंने बहुत से अंधे देखे हैं, टटोल टटोल कर अपना सब काम कर लेते हैं। एक ये हैं लाचारी की अम्मा ।"

जब से बुढ़िया के हाथ पांव न चलते, ज़बान कतरनी की तरह चलती। कहनी अनकहनी सभी कहती, जी भर कर कोसती "अरी तेरा घमंड टूटेगा । देख लेना । महारानी बनी फिरती है, किसी दिन जूठन चाटेगी । मेरी लड़कियों को तूनें जैसे घरों में दिया है उसका फल तुझे भगवान ही देंगे ।" बुढ़िया बड़बड़ाती रहती और बहू निर्विकार भाव से दूध की हंडिया उठा कर खिड़की में रखती, दही जमाती, और हफ्ते भर की मलाई गरम कर घी निकालती, लड़कों के नाश्ते के लड्डूबनाती । जब सुनते सुनते हार जाती और बुढ़िया फिर भी चुप न होती तो हरी की बहू अपनी ऊंची आवाज़ में कहती "कहीं कौवे के कोसने से ढोर मरते हैं ? मुझे तो भगवान ने ही मान दिया है तो तेरी बूढ़ी गालियां क्या करेंगी ?"

बहू दिन भर गृहस्थी की साज सवांर में लगी रहती । गांव भर से उसका लेना देना चलता । किसी के घर दरी चाहिए, हरी के घर दौड़ा आता। बड़ा पतीला, परात, हींग, अचार, किसी को भी वापस न लौटाती, सबको याचित वस्तु मिल जाती । कभी हरी मना करता "इतना लेन देन ठीक नहीं है ।" तो बहू गर्व में पगी मीठी झिड़की देती "जब हमारे घर चीज़ थी, तभी तो कोई मांगने आया । भगवान भरा पूरा घर न देता तो काहे को सौ आदमी मांगने आते।"

हरी चुप हो जाता, पर बुढ़िया जल जाती, "बड़ी देने वाली बनी है, अभी लड़की के हाथ में रुपया धेली रख दूं तो कैसी चंडी बन जायेगी ।"

इसी रुपया धेली को जुटाने के जुगाड़ में बुढ़िया का दिमाग़ हर वक्त लगा रहता । बुढ़िया ताक में रहती, बहू ज़रा देर के लिए घर से बाहर जाती तो टोकरियों, गेहूं चावल सिर्फ एक रुपया आठ आने में किसी को बेच देती । कभी पकड़ी जाती तो बहू बेटे दोनों सिर हो जाते । बहू कहती "तुम्हें चाहिए तो हमसे क्यों नहीं कहतीं, मेरा घर बहा दोगी क्या ?"

बुढ़िया कहती "क्यों मांगू ? मेरा कुछ हक नहीं है क्या ? मेरे बेटे की कमाई है । हिस्सा होगा तो आधा ले लूंगी ।"

बुढ़िया के हिस्से बांट की नौबत न आती । हरी की बहू जब तक बुढ़िया की चोरी की कमाई का रुपया दो रुपया बुढ़िया से छीन न लेती, तब तक उसके पेट का पानी न पचता ।

आजकल बहू को बुढ़िया पर बड़ा क्रोध आता है । बुढ़िया इतनी लालची हो गई थी कि वह बे हिसाब खा लेती, पेट बिगड़ जाता । कपड़े गन्दे कर देती, बहू का एक काम और बढ़ जाता । बहू की सेवा से बुढ़िया को संतोष न होता। चिल्ला चिल्ला कर सारा गांव इकट्ठा कर लेती । आज कल बुढ़िया ने हरी से कह कर अपनी छोटी नातिन रूपा बुलवा ली है । जो उसकी सेवा करती है । पर जब से रूपा घर में आई है सास बहू में रोज़ लड़ाई होती ।

रोज़ रोज़ कलह और गांव भर में बदनामी से हरी बहुत डरता । पर किससे क्या कहे कुछ समझ में न आता । उसे रह रह कर अपनी बहू पर ग़ुस्सा आता । मां तो खैर पागल है ही । और अब है भी कितने दिन की ? साल छः महीने मां के मन की कर दे तो क्या हो जायेगा ? बुढ़ापे में आदमी लालची हो ही जाता है । फिर उसके मुंह में एक भी दांत नहीं ? सिमई खाना चाहती है तो बना दे सिमई । ऐसी कौन सी आफ़त है बनाने में ? उसी के खाने से कमी आ जायेगी घर में । दलिया कौन सी बड़ी नियामत है ? बना देगी तो पेट भर मां भी खा लेगी, यह सब सोच सोच कर हरी कुढ़ता रहता, पर बहू के सामने मुंह खोलने की हिम्मत कहां से लाए । मां ठीक ही कहती है कि मैं तो जोरू का गुलाम हूं । आज देखो फिर सब्ज़ी में मिर्चें ही मिर्चें भर दी हैं जब मुझे मिर्च लग रही है तो मां का क्या हाल होगा ? जबकि वह बिचारी मीठी सिमई की रट लगाए है ।

हरी यह सब सोच ही रहा था कि मां की आवाज़ आई, "डाइन,इतनी मिर्च भर दी दाल में भी और सब्ज़ी में भी ।" हरी की बहू शान्त भाव से बोली

"दही से खा लो ।"

दही का नाम सुनते ही बुढ़िया सामने परोसी थाली छोड़ कर उठ गई। हरी काम पर चला गया । बहू दिन भर घर गृहस्थी करती रही, बुढ़िया ने दिन भर कुछ न खाया । शाम को जब हरी लौटा तो बुढ़िया बोली "बेटा मेरा सीधा तू अलग दे दिया कर, मैं तो इस कुलच्छनी के हाथ का अब खाने से रही।"

हरी हारा थका, परेशान था, चिल्ला कर बोला "हां हां अम्मां का सीधा दे दिया कर और एक गाय का दूध भी । दलिया, सिमई जो खायेगी, रूपा बना देगी । रोज़ रोज़ की हाय हाय से जी पक गया ।"

बहू सन्न रह गई । हरी से उसे ऐसी उम्मींद न थी । चुपचाप एक लोटा दूध में एक मुट्ठी चीनी डाल कर, रूपा के हाथ बुढ़िया को भेज दिया और चुपचाप पड़ गई । गुस्से के मारे उसका बुरा हाल था पर समझ न पाती कि गुस्सा किस पर करे, हरी पर या बुढ़िया पर । यह मनहूस रूपा न जाने किस घड़ी में घर में आ गई । रूपा को लेकर तो बुढ़िया का हौसला और भी बढ़ गया है । जैसे तैसे रात कटी । हरी बिना कुछ खाए पिए शहर चला गया । बहू ने न बर्तन मांजे न चौका लगाया । गुस्से में भंडारे की चाबी बुढ़िया के सामने फेंक दी । गोद का लड़का उठाया और पड़ोस में चली गई । जाते जाते चिल्लाई "भंडारे की चाबी दे दी है । मैं किसी का सीधा वीधा नहीं निकालती, जो जी में आए बनाओ और खाओ ।"

बहू ने इस घर में पानी तक न पीने की क़सम खाई थी और हरी के आने के बाद मायके जाने की ठान ली थी । जब तक हरी नहीं आयेगा वह पड़ोस की काकी के घर बैठी रहेगी ।

आज वर्षों बाद बुढ़िया की जीत हुई थी इसलिए बहू से कुछ न बोली। रूपा से कहा "बेटा चौका बर्तन रहने दे । मामी की कोठरी के आगे अंगीठी जला कर सिमई बना ले । जब आयेगी, आप ही काम करेगी ।"

रूपा ने अंगीठी जला कर निरे दूध में सिमई बनाई और नानी धेवती खा पी कर सो गईं । अंगीठी में अभी जलते हुए कोयले बाकी थे । रूपा ने सोचा था खाकर उठेगी तो कोयले बुझा देगी पर भूल गई । फागुन का महीना था हवा के तेज़ झोंके आते और हल्की चीज़ों को उड़ाते । बहू काकी के घर बैठी पापड़ बेलती रही ।

रूपा और बुढ़िया को सोए अभी एक घंटा भी न हुआ था कि हा हा कार मच गया । बहू दौड़ी दौड़ी घर आई चिल्ला चिल्ला कर गांव वालों को

आग बुझाने के लिए बुलाने लगी । लोगों ने पानी ला ला कर डाला । बड़ी मुश्किल से आग काबू में हुई । गांव वालों की ज़बान पर एक ही वाक्य था "ग़नीमत हुई नहीं तो गांव का गांव फुंक जाता ।"

गांव तो बच गया पर हरी की बहू बरबाद हो गई । वह रोती रही, छाती पीटती रही । उसी की कोठरी में आग लगी थी । उसका तो सब कुछ स्वाहा हो गया था । वर्षों की जोड़ी साड़ियां, जली पड़ी थीं । कोई आधी कोई पूरी। ब्याह गौने के लहंगे जल कर ख़ाक हो गए । गोटे की चांदी बची रह गई थी। बहू के सारे गहने आग में तप कर बदशकल हो गए थे । रज़ाई-गद्दे जगह जगह से जले पड़े थे । बहू ने हरी से छुपा कर नोट रक्खे थे उनका तो पता ही न था । बहू एक एक चीज़ को याद करके रोती रही । जितना समझाते उतना रोती । शाम को हरी आया । सब देख सुनकर माथा ठोक लिया । कहे तो क्या कहे । बुढ़िया तो बुत हो गई । न आंखों में एक आंसू न मुंह में आवाज़। पागलों की तरह आंखें फाड़े देखती गांव वाले कहते बुढ़िया सदमा खा गई है। जितने मुंह उतनी बातें । पराई आग की बातें कर सब अपना जलता कलेजा ठंडा कर रहे थे । हरी की बहू बड़ी धन्ना सेठ कही जाती थी न । कोई दौड़ कर रूपा की मां के घर पहुंचा बोला "जल्दी जा अपनी मां को तो देख, उसे तो हरी की बहू जलती आग में फेंक रही थी गांव वालों ने बचाया ।" कोई बोला "देख लेना एक दिन हरी की बहू अकेले में बुढ़िया को मार डालेगी । उसका सब कुछ चला गया बुढ़िया के चलते, उसे यूं ही छोड़ देगी क्या ?"

पर हरी की बहू रोती रही रोती रही, यहां तक कि भूख और कमज़ोरी से संज्ञा शून्य हो गई । फिर समझ में आया कि जोअपने भाग्य का न था वही चला गया । रोने से वापस तो न आयेगा । भगवान की दया से चारों बेटे और हरी तो सही सलामत है ।

आग लगने के छठे दिन होली थी । शाम को होली जलने वाली थी पर हरी के घर में तो पांच दिन पहले ही होली जल गई । बहू पहले तो लेटी रही, फिर यह सोच कर कि त्योहार के दिन, रंज मना कर असगुन क्यों करे, वह उठी और काम में लग गई ।

ऊंची ऊंची मुंडेर लेकर चौका पोता, बासन मांजे और नहा धोकर चूल्हे में आग बाली । आग लगने के बाद से बुढ़िया की तो बोलती ही बन्द हो गई थी । मुंह से आवाज़ ही न निकलती । बहू के सामने आती तो थर थर कांपती।

बहू चूल्हे के पास पीढ़े पर बैठी सूजी भून रही थी । हरी ने बुलाया "क्या कर रही हो ?"

"सूजी भूनती हूं, अभी आई ।"

"क्यों क्या होगा सूजी का ?" हरी झुंझलाया ।

"आज त्योहार है । मीठा बना लूंगी । सगुन होता है ।" कह कर बहू काम में लग गई ।

बहू तो ठीक हो गई पर मां का बुत चेहरा देख कर हरी को उस पर दया आती । उसका मन था खाना खाते वक़्त मां को भी बुला ले । पर कुछ सोच कर चुप रहा । सिर झुकाए खाना खाकर उठ गया । चौके से बाहर निकलते ही बहू ने कहा "अम्मा को भेज देना खाना खाने ।"

हरी ने सोचा, खुद नहीं बुलायेगी । छोटी हो जायेगी न । अब तो रूपा भी चली गई है नहीं तो उसी से बुलवाती ।

बुढ़िया धीरे धीरे डरती डरती चौके में आई पांच दिन बाद छठे दिन बुढ़िया की आवाज़ सुनाई दी "हलुआ तो बहुत परस दिया ।"

"खा लो और भाता ही किसे है ।"

बुढ़िया खाने लगी, पूड़ी का कौर तोड़ कर मुंह में डाला एक दम कड़ी लगी । सब्ज़ी में एक बार कौर डुबोया फिर सब्ज़ी छोड़ दी ।

बहू ने देखा, मन में सोचा "मिटी मिर्चें फिर ज्यादा हो गई" । उठी और दूध उड़ेला, भरा कटोरा बुढ़िया के आगे रख कर बोली "दूध रक्खा है अम्मा, ले लो ।"

बुढ़िया ने टटोल कर कटोरा उठाया "अरे इतना ? और इत्ती सारी मलाई ?" बुढ़िया के स्वर में आश्चर्य था वह ज्योतिहीन आंखें फाड़े मुंह ऊपर उठाए बहू की ओर ताक रही थी ।

हरी की बंहू दूसरी तरफ मुंह फेर कर बोली "ले लो, साग में मिर्चें ज़्यादा होंगी ।"

बुढ़िया की अंधी आंखों को बहू साक्षात लक्ष्मी लगी । बुढ़िया ने सोचा, 'चलो धन गया सो गया, हरी की बहू सी लक्ष्मी बनी रहे, धन तो वह फिर जुटा लेगी । धन तो फिर आ जायेगा ।'

हरी की बहू दत्त चित्त होकर पूड़ी छान रही थी । बुढ़िया प्रेम से खा रही थी । कहीं कुछ बदल गया था । या शायद जल गया था, उस आग में - रुपया, धन, मान, अभिमान और दोनों के मन का मैल ।

●●●

रोगिणी नं. १४

नं. १४ सन्नाटे में आ गई । वह क्या समझ कर दौड़ी आई थी। उसका जी चाहा कि चिल्ला चिल्ला कर सारा मुहल्ला जगा दे और सर पटक पटक कर यहीं जान दे दे । मरना तो है ही ऐसे ही सही । उसे चक्कर आ गया । उसके हाथ में दूसरे पैर की पायल बाकी थी । रिक्शे वाले के हाथ में पायल दी और बोली, "बड़े अस्पताल ।"

रोगिणी नं. १४ अपने को अस्पताल-परिवार का प्रमुख और जिम्मेदार सदस्य समझती । जब उसका पति, उसकी बीमारी और तीमारदारी से ऊबकर उसकी मर्ज़ी के खिलाफ उसे अस्पताल ले आया था, तब वार्ड नं. दो में ऊपर की क़तार में, कोने वाला आखिरी १४ नम्बर का पलंग उसे मिला था । उसी दिन से उसका असली नाम अस्पताल के रजिस्टरों में क़ैद हो गया । वह नं. १४ के नाम से ही जानी जाने लगी ।

नं. १४ जिस दिन आई थी, बिलकुल पीली पड़ी थी, आंखें धंसी जा रही थीं, आगे को निकला पेट, उठने-बैठने से लाचार थी । डाक्टरों का कहना था कि उसके पेट में बहुत वज़नी गोला है जिसे आपरेशन करके निकालना होगा। उस दिन नं. १४ सारा दिन तकिए पर सिर रक्खे आंसू बहाती रही । उसे अपने पति पर गुस्सा आ रहा था कि जीवन के अंतिम क्षणों में वह उसे इस 'नरक' में डाल गया था । अस्पताल की पोशाक में उसे एक ढीला कुरता और एक छोटा पेटिकोट मिला था, जिसे पेट में न आने की वजह से सिस्टर न् आगे से फाड़ दिया था । शाम को जब उसका पति मिलने आया तो नं. १४ फूट फूट कर रोई, वह बेचारा कुछ समझाने बुझाने की बजाय, चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा । नं. १४ जी भरकर रोई ।

लेकिन कुछ ही दिनों बाद नं. १४ डाक्टरों के लिए ख़ास मरीज़ बन गई । उसे अपने अस्पताल के सिविल सर्जन के बारे में बहुत सी बातें मालूम थी, कुछ घरेलू कुछ अस्पताल जीवन से सम्बन्धित, हर वार्ड बॉय, आया, दाई उसकी सूचनाओं में वृद्धि करते रहते, कुछ झूठ कुछ सच । पर नं. १४ पूरी कहानी गढ़ने में उस्ताद थी । अब जब कहानी तैयार हो गई तो, उसे सुनाना

भी तो जरूरी था, इसलिए वह अपने साथी मरीजों को जो उसकी अपेक्षा नए ही होते, कहानियां सुनाते न थकती, किसी डाक्टर को गुस्से वाला, किसी को दयालु, किसी को देवता बनाते उसे देर न लगती । पर वह कहानियां हमेशा डाक्टरों के बारे में ही सुनाती, उनसे कम ओहदे वाले को किसी योग्य न समझती।

हर नए आने वाले को नं. १४ बताती, यहां दबकर रहने में कल्याण नहीं । इन काली-कलूटी नर्सों, आया और मेहतरानियों से दबकर रहोगे तो कभी अच्छे नहीं हो सकते । मैं तो सिर पर चढ़कर बोलती हूं । यह छोटी सी मरियल नर्स जो खुद किसी मरीज़ से कम नहीं है, एक दिन नं. १४ से बोली, "कम्बख्त सरकारी अस्पताल का माल खा खा कर मोटी हो रही है । दिन रात चीखती है ।" नं. १४ हाथ मटका कर बोली,"हां खाती हूं, रंडी, तो कोई तेरे खसम का ।"सारा वार्ड हंस पड़ा । मरियल नर्स भुनभुनाती चली गई, "इस औरत के तो मुंह ही नहीं लगना चाहिए ।"

नं. १४ अपनी सबसे पहली दोस्त नं. १३ को अक्सर याद करती है, नं. १३ मरने चली थी, आदमी से लड़ाई हुई थी, सोचा था रेल से कटकर मर जायेगी । पर टांगे कट गईं खुद न मरी, अस्पताल में भर्ती कराकर घर वाले बेफिक्र हो गए । कभी कुछ दिन देवरानी रही, फिर छोटा भाई रहता रहा । बड़ी शान्त स्वभाव की थी । किसी से कुछ न कहती, चुप पड़ी रहती । इसी तरह तीन महीने काट दिए, तब कहीं प्राण निकले । नं. १३ के मरने पर नं. १४ खूब रोई थी, पर सबके सामने नहीं छिप छिप कर । उसके मन में कोई कह रहा था, इसी तरह तू भी मर जायेगी कोई पूछने को भी न आयेगा ।

कभी कभी उसे अपनी विवशता बहुत सालती । तो उसे छिपाने के लिए सारा क्रोध, खट खट करती, इधर से उधर घूमती नर्सों पर उतारती । चीख़ चीख़ कर कहती, "अरे इस शरीर का क्या घमंड ? ये जो बनी ठनी घूमती हैं इनके एक-एक लच्छन मुझे मालूम हैं । कैसे फोन में घुल कर मिसरी हो जाती हैं जब यारों से बातें करना होता है । अगर दुनियां में मुझे किसी से जलन है तो, सच्ची मानों, इन्हीं नर्सों से है । इन सा कोई नहीं, एक ने डाक्टर सक्सेना से ब्याह कर लिया, फिर डाक्टरनी बनकर जब अस्पताल में आयी तो ऐसी सुन्दर लग रही थी कि, बस पूछो मत ।"

उसने यहां का क्या नहीं देखा । पहले तो चलती-फिरती नहीं थी, पर जबसे चलने-फिरने लगी है, धीरे-धीरे चलकर हर वार्ड की खबर ले आती है । मर्दाने वार्ड में एक आदमी ने गीता नर्स का हाथ पकड़ लिया । वह कहती

यह बात उसने अपनी आंखों से देखी है । सिर्फ कानों सुनी बातों को आंखों देख लेती । और जिस बात का सिर न पैर उसको भी कोई न कोई जामा पहना देती । बड़ी प्रखर प्रतिभा है उसमें इस मामले में । वैसे वह बड़ी नरम दिल भी है । दुखी के साथ, एकाकार होकर दुखी होती है । एक कम उम्र की लड़की का पति मर गया, नं. १४ उसके साथ-साथ खूब रोयी ।

पहले तो वह कुछ बातें, अपने पति को भी बताती, सुनकर कहता, "तेरा तो खूब मन लग गया है ।" नं. १४ की नाक लाल हो जाती आंखों में तुरंत पानी भर जाता, भर्राए गले से कहती, "इस नरक में भी किसी का मन लगा है, मैं तो जिन्दगी के दिन काट रही हूं ।" मन ही मन वह डरती कि उसका मन लगने की बात जानकर उसका पति, शाम को आना ही न छोड़ दे। वह उसे अकेले घर पर छोड़ना ही नहीं चाहती थी । दार्शनिक अंदाज़ में कहती किसी का कोई भरोसा नहीं, न ज़िंदगी का न आदमी का ।

एक बात तो वह भी मानती है कि इस अस्पताल में उसे इतनी बातों का पता चलता है जितनी वह ज़िन्दगी पूरी करके भी न सीख पाती । कोई हिन्दू मुस्लिम दंगे की बातें करता, कोई हाला डोला आने का वर्णन करता और बम फटने की बातें तो आम हो गई थी । नं. १४ सारी बातें बड़े ध्यान से सुनती जैसा समझ में आता वैसा ही समझती । एक बार रेल लड़ गई थी, सारे अस्पताल में वह अफरा तफरी मची थी कि नं. १४ डोल गई, उसका भी जी चाहा कि दुखियारे, घायलों की सेवा करे, पानी मुंह में डाले, जब रेल लड़ी थी तो एक औरत लूली हो गई थी, अपनी मक्खी तक न हांक पाती थी । नं. १४ ने डाक्टर से कहकर मच्छरदानी लगवाई थी । जब तब उसके मुंह में पानी डाल देती थी। लूली का तीमारदार कहीं गया था । उसके मुंह में पानी डालकर बहुत खुश हुई, कान पकड़-पकड़ कर कहती रही, "भगवान अपाहिज किसी को न बनाए । इससे तो मेरी जैसी बीमार भली । शहर में दंगा हो जाय, तो आदमी किसी के मुंह में पानी तो डाल सके ।"

पहले शाम को वह अपने पति की बाट जोहा करती, पर अब तो वह अक्सर नहीं आता, बस इतवार के इतवार । नं. १४ अस्पताल की ही दवा-दारू पर रहती, अस्पताल का ही खाना खाती, वह डाक्टरों का हमेशा गुणगान करती जो उसकी इतनी देखभाल कर रहे हैं, वह ही आकर क्या कर लेगा, ऐसा ही करने वाला होता तो भरती क्यों कर जाता ? जब भी आता कुछ शिकायत न करती, कुछ भी न पूछती । घर में उसका है ही क्या जो पूछे, बाल नहीं बच्चा नहीं । नाते-रिश्तेदार भी उसे भूल गए तो वही क्यों याद करे ।

जब नं. १४ के पेट का एक्सरे लिया जाता, तो हंस कर कहती "इस

मरे पेट के पचासों फोटू लिए गए । एक मुंह का भी डाक्टर साहब फोटू खींच देते तो मरने के बाद निसानी तो रह जाती ।"

आजकल नं. १४ कुछ बेचैन-सी रहती है, ज्यों ज्यों आपरेशन की तारीख़ पास आ रही है उसे डर लग रहा है । वह चाहती है कि आजकल उसका आदमी रोज़ आया करे । वह पतली लम्बी नर्स कई बार पूछ चुकी है, "तेरा आदमी आया ?" न जाने क्या बात है । क्यों पूछ रही है । वैसे आजकल उसे रोज़ ताक़त की सुइयां लगाई जा रही हैं । डाक्टरों की बातों से उसने अंदाज़ा लगा लिया है कि जल्द ही उसका अंतिम और बड़ा आपरेशन होना है।

धीरे धीरे वह दिन भी आ गया । कल नं. १४ की ज़िन्दगी और मौत का निपटारा होना है । सब तैयारियां हो गई हैं, उसका आदमी भी काग़ज़ों पर दस्तख़त कर गया है पर आज शाम को नहीं आया, चार बजे से ही वह उसका इंतज़ार कर रही है, एक बार सोचती है हो सकता है कल सुबह सुबह ही आए। पर आज आकर मुझे तसल्ली तो दे जाता । इसके बाद जो होना होगा, होगा। जैसे जैसे दिन डूब रहा था उसका दिल भी डूबा जा रहा था, उसकी आवाज़ में आज वह खनक न थी जिसमें मौत को भी जीतने का कहीं विश्वास भरा था।

अंधेरा हो गया, वार्ड में बत्तियां जल गईं । नर्स उसे कुछ न खाने पीने की हिदायत देकर चली गई । नं. १४ को लगा अब उसका आख़िरी वक़्त आ गया है, यह नं. १४ का पलंग, ऊंची-ऊंची कड़ियों से छाया हुआ वार्ड, साथी मरीज़, दुष्ट नर्सें सभी कुछ छूट जायेगा । पर वह आया क्यों नहीं ? उसे मालूम तो है कि कल आपरेशन है । कहीं बुख़ार में पड़ा तप तो नहीं रहा ? नं. १४ का मन भर आया , कहीं ऐसा न हो कि वह घर में पड़ा तड़पता रहे और मैं इधर सबसे किनारा करके चली जाऊं । तब तो उसे बहुत दुःख होगा । उसे आना तो था ।

रात होने लगी, नर्सें बदल गईं । रात के दस बज गए, वार्ड में रोशनी धीमी हो गई, मरीज़ अपने दुख दर्द के अनुसार जागने सोने लगे । पर नं. १४ की आंखों में नींद का नाम नहीं, उसे अपना घर, अपना आदमी बहुत याद आ रहा था । वह बेचैन हो गई, कौन जाने अब जिऊंगी थोड़े ही । एक बार उसे देख ही आऊं, बीमार होगा तो कल भी न आ पायेगा । नं. १४ पलंग से उतर कर खड़ी हो गई । उसे लगा उसके बदन में काफ़ी ताक़त है कि वह घर जाकर, अपने आदमी को देखकर फिर लौटकर आ सकेगी । मन में खटका हुआ घर बहुत दूर है, अस्पताल एक छोर पर, घर दूसरे छोर पर । घड़ी ने ग्यारह के घंटे बजाए, नर्स मेज़ के पास बैठी ऊंघ रही थी । वह धीरे से वार्ड

के बाहर आ गई । नं. १४ अस्पताल की ज़मीन के चप्पे-चप्पे से परिचित है । उसने सोचा आज तक तो मुझे घर की याद ने इतना बेचैन क़भी नहीं किया ? 'शायद मेरा आखिरी वक्त है ।' नं. १४ बुदबुदाई ।

उत्तर वाले फाटक की छोटी खिड़की रातभर खुली रहती है ध्यान आते ही उत्तर की ओर चल दी । विचारों की आंधी चल रही थी । उसका बदन थर-थर कांप रहा था, वह चलती चली गयी । न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से वह फाटक के बाहर आ गई ।

नं. १४ अस्पताल की बेढंगी पोशाक पहले, बाल बिखराए नशे की हालत में रिक्शे पर बैठी घर की और दौड़ी जा रही थी । न उसे राह दिखाई दे रही थी, न चाह । बस उड़ी चली जा रही थी । गली के बाहर रिक्शा रुक गया, वह उतरी, पैरों की दो पायलें उसके पास थीं जो नर्सों ने पहले ही पैरों से उतरवा दी थीं । चुपचाप एक पायल रिक्शेवाले को थमा दी और धीरे धीरे अंधेरे में टटोलती नं. १४ अपने घर के सामने खड़ी थी । अब उसकी सारी शक्तियां जवाब दे रहीं थी । रात के बारह बजे होंगे या उससे भी ज्यादा । वह खड़ी खड़ी पति को पुकारने का साहस बटोर रही थी । उसका अपना घर उसे पराया लग रहा था, जिसके अन्दर घुसने में उसे डर लग रहा था ।

खिड़की से किसी औरत के हंसने की आवाज़ आई । नं. १४ चौंकी, राधा आई है क्या ? राधा,उसकी बहन, कैसे आई है वह सोच ही रही थी कि आवाज आई, "दिदिया के आने के बाद तो तुम मुझे पूछोगे भी नहीं ।"

उसने पति की आवाज सुनी, "वह तो अब आने से रही और आ भी जाय तो तेरा हाथ पकड़कर क्या छोड़ दूंगा । अब मुझे वह क्या देगी ? पड़ी रहेगी एक तरफ । देखो पता ही चल जायेगा, मरती है कि बचती है । उसकी बीमारी ने तो मुझे खा लिया है ।"

नं. १४ सन्नाटे में आ गई । वह क्या समझ कर दौड़ी आई थी । उसका जी चाहा कि चिल्ला चिल्ला कर सारा मुहल्ला जगा दे और सर पटक पटक कर यहीं जान दे दे । मरना तो है ही,ऐसे ही सही । उसे चक्कर आ गया। किसी तरह दीवार थामी । अब तो न सर पर आसमान था न पैरों तले ज़मीन । लगा जान ही नहीं है, किसके बूते पर चिल्लाए, जिस ओर आई थी, निरुद्देश्य उसी तरफ चल दी । उसके हाथ में दूसरे पैर की पायल बाक़ी थी। रिक्शे वाले के हाथ में पायल दी और बोली, "बड़े अस्पताल ।"

रिक्शा चला जा रहा था । नं. १४ को लगा उसके बदन की सारी ताक़त खत्म हो गई है । अब वह एक क़दम भी नहीं चल सकती । आंखें मुंद

गईं, सारी इंद्रियां शिथिल हो रही थीं । उसे लगा वह शायद ज़मीन पर घिसट रही है । "हे भगवान क्या मैं अस्पताल पहुंचने से पहले ही मर जाऊंगी ? नहीं! नहीं, मैं १४ नम्बर के पलंग पर ही मरना चाहती हूं । मरने से पहले मुझे वहां पहुंचा दो दीनानाथ ।"

रिक्शे वाला बिना पीछे देखे, जल्दी-जल्दी पैडल मारे जा रहा था । वह भी जानता था कि उसे जल्दी से जल्दी अस्पताल पहुंचना है और सवारी को पहुंचाना है । भले ही उसे नहीं मालूम था कि इस सवारी का नाम तो पहले से ही अस्पताल के रजिस्टरों में क़ैद है ।

नं. १४ मरना चाहती है, अगर न मरी तो ? क्या उसका जीवन भी अस्पताल में क़ैद होकर रह सकता है ?

●●●

दुई बच्चन की खातिर

जब वह लंका की डाइन विरक्त भाव से आगे बढ़ जाती तो अनुभवी वृद्धाएं बहुओं को बतातीं, "इसका नक्षत्र ही ऐसा है, न सुख से रही और न रहने दिया । पहले अपना आदमी, लड़का, लड़की, फिर मुहल्ले वालों की 'आत्मा का कलेस' ही बनी रही । बस इसे तो रुपया ही प्यारा है सो छाती पर धरे फिरती है ।"

आज गंगा को बेबस और बेहोश पड़ा देख कर उसके मुहल्ले वाले या तो हंस रहे थे या घृणा से मुंह फेर कर आगे बढ़ जाते थे । उसकी कोठरी के आगे भीड़ भी जमा थी सभी लोग टीका-टिप्पणी कर रह थे । बेहोश गंगा के मुंह से झाग निकल रही थी । आंखें फटी पड़ती थी और उसके गले की सोने की हंसुली ग़ायब थी । भीड़ में से अधेड़ रिक्शे वाले ने जो मुहल्ले भर में 'ज्ञानी' था, दार्शनिक की तरह सिर हिलाते हुए कहा, "ख़ूब थी यह बुढ़िया !" अपने भारी भरकम शरीर को हिलाती हुई सिरतजिया बोली, "थी कि है ? अरे! यह मर थोड़े ही गई है । यह तो डायन है, लंका की डायन ।"

गंगा को इस कोठरी में रहते बीस वर्ष हो गये थे और वह बराबर किसी न किसी की 'आत्मा का कलेस' ही बनी रही । फिर आज जब कि वह मरी नहीं सिर्फ बेहोश भर थी, सिरतजिया के जी को क्यों न जलाती ?

लठैत की मां, जो अब नाती पोतों वाली हो चुकी है, बताती है कि जब उसका ब्याह हुआ था तब गंगा ने यह घर किया था । २२ वर्ष की जवान गंगा को जब झुरई की मां ने देखा तो झुरई पर बरस पड़ी - "निगोड़े तू इसी को लाने बनारस गया था । अरे, जवानी में तो सुअरिया भी अच्छी लगती है पर यह तो उससे भी गई बीती है ।" और झुरई चुपचाप बैठा चिलम पीता रहा ।

पर गंगा को अपने रूप की टीका-टिप्पणी से कोई मतलब न था । वह अपने बचवा और रन्नो की बात सोच रही थी । बेचारे क्या जानते होंगे कि उनकी मां उन्हें छोड़ कर क्यों और कहाँ चली गई ? रह रह कर उसके मन में टीस उठती, जिसका दर्द उसके मुंह पर भी छा जाता । और उस व्याकुलता में वह अपने सर को दीवार पर पटक देती । जोर से नहीं धीरे से क्योंकि वह

अपने दर्द को अपने तक ही सीमित रखना चाहती थी । गंगा की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी । उसने झुरई की ओर देखा, जिस पर न्योछावर होकर उसने यह दर्द मोल लिया था ।

झुरई हाथ में गोल डिबिया लिये था । डिबिया के ढक्कन पर शीशा लगा था पर उस शीशे में झुरई अपनी दोनों मूछें एक साथ न देख पाता था । वह अपने हाथ को कभी इधर कभी उधर कर देखने का प्रयत्न कर रहा था । गंगा अपने साथ लाये बक्स में से शीशा निकाल देने वाली थी कि उसकी सास ने आकर कहा, "यहां बैठ कर खाने नहीं आई है, चल उठ झाड़ू उठा और मेरे साथ चल ।" गंगा ने झाड़ू उठाई तो ऐसी कि झाड़ू ही उसकी जीवन-संगिनी बन गई । कमर पर चौड़ी पट्टी कस कर, हाथ में झाड़ू उठा कर जब गंगा काम पर निकलती तो छोटे बच्चे रास्ते से हट जाते, पुरुष दूसरी ओर मुंह फेर लेते और स्त्रियां अपनी धोती के पल्ले में मुंह छिपा कर हंसने लगतीं ।

दिन भर की थकान के बाद गंगा जब रात को झुरई से मिलती तो सब दुख भूल जाती । झुरई वादा करता कि वह उसे जिन्दगी भर अपनी बनाये रक्खेगा । तब गंगा उसकी चौड़ी छाती में सिर छिपा लेती । दो बूंद पानी उसकी आंखों से टपक पड़ता और झुरई उस पानी को अपने ओठों से पोंछ देता। गंगा हर रात झुरई को एक रुपया देती, जिसे अपनी बंडी में रख कर गंगा के मुंह पर चुम्बनों की वर्षा कर देता ।

यूं तो गंगा जो कुछ कमाती सास को दे देती पर झुरई के लिये वह छिपा कर काम करती । सुबह होते ही झुरई और गंगा दोनों ही झाड़ू लेकर काम पर चलते तो झुरई की मां रुंधे गले कहती, 'कैसी भी हो झुरई को लगा लिया ढर्रे से, मुझे और क्या चाहिये ?' आधे रास्ते पर पहुंच कर झुरई कहता, "गंगा तू काम कर लेगी न, मैं जा रहा हूं ।" गंगा मुस्कुरा कर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेती । झुरई रुपये का सदुपयोग करने चला जाता १२ बजे घर लौट कर मां से मांग कर खाना खाता और दिन भर नशे में पड़ा रहता, शाम का काम दोनों सास बहू मिल कर करतीं ।

गंगा के दिन बीतते जा रहे थे । उसके मन में असीम सुख और संतोष भरा रहता, जिसकी गरिमा उसके भद्दे मुखमंडल पर व्याप्त रहती । कभी कभी उसे बचवा रन्नो की याद आती तो अपने आगे खेलते सरदवा और सोनियां को गोद में उठा लेती । उसकी आंखों में पानी भर आता, पीपल के नीचे स्थापित महादेव को हाथ जोड़ कर गंगा बुदबुदाती, "बाबा तुम बड़े दयालु हो । दो को छोड़ कर आई तो दो से मेरी गोद भर दी ।"

एक दिन झुरई सो गया पर गंगा न सो सकी । दोनों बच्चे सो गये थे । गंगा के मन में तरह तरह के विचार आ रहे थे । भविष्य की सुखद कल्पनाओं में डूबी गंगा झुरई के सौन्दर्य को अतृप्त नेत्रों से पान करने लगी । खपरैल की छत से छन छन कर चांदनी उसके मुंह पर पड़ रही थी । सोता हुआ निश्छल चेहरा गंगा को बड़ा सुन्दर लगा, उसने सोचा यदि उसे मलमल का कुरता और बनारसी किनारी की धोती ला दूं तो कितना सुन्दर लगेगा । फिर अगले पखवारे मामा की लड़की का ब्याह भी है । आखिर झुरई भी तो उसके साथ जायेगा । गंगा रुपयों का हिसाब लगाने लगी । उसे तीव्र उत्कंठा हुई कि वह गिने कि मेरे पास कितने रुपये जमा हो गये हैं । गंगा ने एक बार झुरई पर नजर डाली और सोता जान कर बक्स खोल कर रुपये गिनने लगी। सब अच्छी तरह बन जायेगा और सोनियां के लिये चांदी के छल्ले भी ले लूंगी। गंगा ने झुरई की ओर देखा और संतोष की सांस ली ।

दोपहर को जब गंगा काम करके लौटी तो देखा ताला टूटा हुआ है और रुपये ग़ायब । उसका जी धक् से रह गया । बक्स देखा और रोने लगी। सास ने भी दिल की भड़ास निकाली, "अभी क्या हुआ है । देखना खसम के लच्छन ।"

गंगा को रुपये का उतना दुख न था जितना झुरई के जाने का। रुपये तो उसी के लिये थे । हां, पहन ओढ़ कर चलता तो मेरी भी छाती ठंडी होती। गंगा के सपने टूट गये थे पर वह न रोती न हंसती । अब वह कुछ सोचती ही न थी सोचने से उसे भय लगता, कहीं सुखद स्मृतियां आकर उसके टूटे हुये दिल को बिखेर न जायें । वह दिन रात काम करती । उसका अपना कुछ न था । सिर्फ काम और वह । दरोगा से रो रो कर सरकारी नौकरी की प्रार्थना करती । अंत में उसे भी दया आई तीन रुपये महीना गंगा के देने पर दरोगा ने उसे सड़क की सफ़ाई का काम दे दिया । वह दिन भर सरकारी और 'पिराइवेट' काम में लगी रहती । शाम को पांच बजे घर लौटती तो मुंह में अन्न का दाना जाता । मुहल्ले वाले कहते, "बाप रे ! भूतनी है मरी, भूतनी !"

ऐसे ही गाढ़े समय में गंगा इस कोठरी में आई जिसके बग़ल में लठैत की मां रहती है । गंगा अपने साथ कुछ न लाई थी वह गोद में दो साल की लड़की लेकर तीन साल के लड़के की उंगली पकड़े अपने 'दुई बच्चन की खातिर' घर से निकल पड़ी थी । किसी ने गंगा की छाती को धन्य कहा । किसी ने झुरई को गालियां दी । गंगा रहने लगी । यदि कभी झुरई दूर से भी उसकी कोठरी की तरफ आता दिखाई देता तो गंगा चिल्ला चिल्ला कर मुहल्ला सिर पर उठा लेती, "नास पीटे तू बार बार मेरी पसीने की कमाई उड़ा कर ले

गया । मेरे, दोनों बच्चों की खातिर मुझे अपनी सूरत न दिखा ।" गालियों की बौछार से झुरई अपना बदन सिकोड़ लेता । और सर नीचा करके उसके घर के सामने से निकल जाता किन्तु जब गंगा घर पर न होती तो झुरई दोनों बच्चों को बाज़ार लिवा ले जाता,पैसे देता, जलेबी देता और कोठरी से थोड़ी दूर आकर दोनों को छोड़ जाता । शुरू में गंगा जमी देखती बिगड़ती किन्तु बाद में जान कर भी अनजान बनी रहती और काम में लग जाती।

गंगा की साथिनें काम से लौटतीं, नहातीं, कपड़े धोतीं, बच्चों को तेल लगातीं और जाड़ों की भागती धूप को एक जगह से दूसरी जगह बैठकर पकड़ने की कोशिश करतीं तब गंगा काम से लौटती। दोनों हाथों में झाडू लिये सिर से पैर तक धूल धूसरित गंगा, जब अपने घर का दरवाजा खुला देखती तो पागलों की तरह चिल्लाती । उसकी आवाज़ सुनकर सोनियां और सरदवा दोनों घर की ओर भागते । दोनों कोठरी के सामने खड़े होकर एक दूसरे के पीछे छिपने का प्रयत्न करते । दोनों को मालूम था कि घर खुला छोड़ कर जाने की क्या सज़ा है । परन्तु वे गये ही कहां थे वे तो केवल सड़क पर जाते हुये नटों को फाटक से देख रहे थे ।

गंगा बांस की खपच्ची उठाकर मारना शुरू करती और बच्चों की, 'हाय, हाय, मरे, मरे' की आवाज़ से गंगा के लम्बे उपदेश ख़त्म होते । साथ ही साथ वह मुहल्ले के बच्चों और उनके मां बाप को कोसती जाती जो उसके बच्चों को बिगाड़ने पर तुले हुये हैं । मुहल्ले वालों को गालियां देना उसी समय समाप्त होता जब कोई हिम्मत करके एक घंटा गंगा से गाली गलौज कर लेता।

गंगा अब आशा निराशा के झकझोरों से दूर हो गई थी । उसे जिस बात का विश्वास हो जाता हो जाता । इसी तरह उसे विश्वास था कि उसका पुत्र पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बनेगा । यही विश्वास उसकी कल्पना के महल का आधार था । उसकी कल्पना में दोनों आदर्श बालक, धनी, सुशिक्षित, सभ्य और सुन्दर बन कर आ जाते । गंगा धीरे से बुदबुदाती, "अरे तब मैं झुरई के मुंह पर थूक दूंगी ।" गंगा के कानों में सोनियां के ब्याह के बाजों की आवाज़ आने लगती । देने के लिये गहनों कपड़ों की कल्पना करती और जोड़े हुए रुपयों का हिसाब लगाती ।

एक दिन दस बजे जब गंगा लौटी तो सोनियां सरदवा सो चुके थे । क्रोध के कारण उसके पैर ठीक से नहीं पड़ रहे थे । वह आकर चुपचाप सरदवा की खाट पर लेट गई । उसके लेटते ही सरदवा चीख पड़ा और फिर सो गया। सरदवा थोड़ी थोड़ी देर बार चीख पड़ता । लठैत की मां खाना खा रही थी उठकर गंगा की कोठरी तक आई तो देखा गंगा सरदवा की बांह का मांस चुटकी

में पकड़े थी और वह बराबर चीख कहा था ।

"ये क्या कर रही है डायन ?" लठैत की मां ने पूछा ।

"ये तो जगाया है दीदी, जगाया । बाकी तो अब समझूंगी । मेरे तो करम फूट गये । आदमी निकम्मा निकल गया और लड़का दुस्मन" गंगा ने सरदवा को चारपाई से नीचे फेंक दिया ।

"हाय राम ये मां है ? देखो तो। यह तो डायन है भगवान । कसाइन सोते हुये बच्चे को मारे डाल रही है" लठैत की मां हाथ मटका मटका कर कह रही थी, मानो वह सबको देखने के लिये बुला रही हो । गुरक्की चिमधी मिट्टी के तेल वाली, द्वारका की दुलहिन समी लठैत की मां के इशारे को समझकर गंगा की कोठरी के सामने खड़ी हो गईं ।

"मुहल्ले वालों ! मेरे बच्चों को मत बिगाड़ो । मैं इन्हीं की ख़ातिर जी रही हूँ । और यह लड़का जिसकी पढ़ाई के पीछे मैं १००) रु. महीने खर्च कर रही हूँ आज दो महीने से स्कूल नहीं गया । इसका नाम भी कट गया । फ़ीस के पैसे खा जाता है और दिन भर घूमता है । यह मेरे भाग्य का फेर है जो इस पर इसके बाप का साया पड़ गया है । खुद तो मर गया यह निशानी छोड़ गया। हे महादेव बाबा ! आज दोनों में से एक को उठाना पड़ेगा - या तो यह लड़का रहेगा या मैं ।"

इसी निश्चय के लिए गंगा ने ईंट उठाकर मारी जो लड़के के कान को छूती हुई चूल्हे पर चढ़ी पतीली में पूरे ज़ोर से लगी । सोनियां भी जागकर रोने लगी । घर का कुहराम सुनकर दरवाज़े पर खड़ी औरतें एक एक कर जाने लगीं । मारते मारते जब गंगा के हाथों में दम न रहा तो ज़मीन पर लेट गई और सूखे गले को तर करने के प्रयास में ओठ चाटते चाटते सो गई ।

गंगा के प्रयास व्यर्थ जायेंगे ऐसा मानने के लिए वह तैयार न थी । उसका शाम का मारपीट का प्रोग्राम पूर्ववत् था । फिर अब पहले की तरह कोई दिलचस्पी न लेता । न कोठरी के आगे भीड़ जमा होती और न बंगले की मेम साहब गंगा को कोठरी खाली करने का आदेश देतीं । जैसे सब कुछ स्वाभाविक हो गया है ।

आजकल गंगा का काम और बढ़ गया था । वह बराबर सोनियां को गोद में उठाकर वैद्य के घर ले जाती पर वह ठीक होने नहीं आ रही थी । खीज भरी गंगा दिन भर काम करती । शाम से लेकर ११ बजे रात तक लड़के को पीटती और बीमार लड़की की दवा-पानी, दूध और ग़ालियों से सेवा करती। उसे ख़र्च बहुत करना पड़ता पर इस बीच में भी लड़की के ब्याह के लिये रुपया जमा करना न भूलती ।

गंगा को समझना उसकी साथिनों के बस की बात न थी । समी उससे

डरने लगी थीं । उसके आने से पहले सभी साथिनें अपने बच्चों को घर बुला लेतीं जो गंगा की कोठरी के सामने खेलते होते । सरदवा बड़ा हो गया था, साफ कपड़े पहनता, पान खाता, मिस्सी, सुरमा लगाता और घूमता । नसा पानी से परहेज न करता ।

सोनियां अच्छी होने ही न आती । गंगा उसके ब्याह की साइत देखती रही । रुपया जमा हो गया था और उसे डर था कि कहीं झुरई चुरा कर न ले जाय । सब सोच समझकर उसने सोने की हंसुली पैरों में ड़ेढ़ सेर चांदी के कड़े बनवा लियें थे, जिन्हें हर समय पहने रहती । गंगा जहां काम करने जाती तो बुबुआइनें आंखों ही आंखों में कहतीं, बड़ी मालदार है बुढ़िया । "क्यों जमादारिन तुम्हें बुढ़ापे में गहनों का शौक़ क्यों चर्राया ?" पूछने पर गंगा अपने को न रोक पाती, "बहूजी,आदमी निकम्मा निकल गया । लड़का कहे में नहीं। जमाना ऐसा किसी का बिसवास कैसे करूं ? बहूजी । इसी से अपनी रकम अपने पास रक्खे फिरती हूं । कोई गला ही घोट देगा तभी पा सकेगा । सोनियां अच्छी हो गई तो उसके ब्याह में खरच दूंगी ।"

गंगा काम से लौटकर कोठरी में घुसती तो उसे डर लगता । सोनिया के पेट में हाथ रखती कि सांस है कि नहीं । सोनियां कभी आंखें खोलकर देखती तो कभी चुपचाप पड़ी रहती । गंगा को अब कल्पना में सोनियां के ब्याह के बाजों की ध्वनि न सुनाई पड़ती । उसके बक्स में साड़ियां पड़ी रहतीं । वह उन्हें धूप में न डालती ।

धीरे धीरे वह दिन भी आया जब गंगा की सोनियां भगवान को प्यारी हो गई और उसने उसे अपने पास बुला लिया । गंगा की सोनियां क्या छूट गई जैसे सब छूट गया । लठैत की मां समझाती, "अरी, कुम्हार के आवै के सब बर्तन साबित नहीं निकलते । फिर तेरी तो लड़की थी, कौन कमा के खिलाती। अब भूल जा । हंस बोल के दिन काट ।" गंगा चुप रहती काम ही उसका साथी था । दोनों वक़्त का खाना बनाकर रख देती । रात को दोनों मां बेटे खाकर सो जाते । अब वह न सरदवा से पूछती कि कहां रहता है, क्या करता है, न गालियां देती, न लड़ती । एक दिन लठैत की मां ने प्यार से सहेजा, "देख गंगा, सरदवा दिन दिन भर झुरई के पास रहता है । यह ठीक नहीं, उसे रोक ।" पर गंगा चुप रही । इस चुप्पी में वह अपनी हार स्वीकार कर लेती और पराजय का दुख भुलाने के लिए काम में लग जाती ।

गंगा वास्तव में हार गई । सोनियां धोखा दे गई और सरदवा झुरई के साथ शहर चला गया । गंगा अकेली रह गई । पर न रोई, न गालियां दीं

और न भाग्य को ही कोसा । झाड़ू उठाई और काम से लग गई । सबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि गंगा इतनी सीधी कैसे हो गई । पर दो दिन बाद गंगा के सीधे हाने का भ्रम दूर हो गया । अब उसके जीवन में दो ही काम रह गये थे। काम करना और लड़ना । हर घड़ी हर बात पर वह लड़ने को तैयार रहती।

इसी तरह लड़ते लड़ते गंगा ने अपने जीवन के ७० वर्ष काट लिये । उसकी सारी शक्तियों ने जवाब दे दिया था । जब वह एक हाथ से लाठी टेकती दूसरे में झाडू लेकर बाहर निकलती तो बच्चे निशंक होकर चिल्लाते, "लंका की डाइन" "लंका की डाइन" । जब वह लंका की डाइन विरक्त भाव से आगे बढ़ जाती तो अनुभवी वृद्धाएं बहुओं को बतातीं, "इसका नक्षत्र ही ऐसा है न सुख से रही और न रहने दिया । पहले अपने आदमी, लड़का, लड़की, फिर मुहल्ले वालों की आत्मा का कलेस ही बनी रही । बस इसे तो रुपया ही प्यारा है सो छाती पर धरे फिरती है ।"

आज वह रुपया जिसे छाती पर धरे फिरती थी, किसी ने छीन लिया था तो देखने वालों को गंगा के शब्द याद आ रहे थे, "अपनी रकम है, साथ लिये फिरती हूं । कोई गला ही घोटेगा तब निकाल पावेगा ।"

कोख का कलंक

हरिकान्त इस सबसे निर्लिप्त नहीं थे, कहीं अपने को दोषी भी पा रहे थे और गोमती से आंखें मिलाने का साहस नहीं कर पा रहे थे। सब भगवान की माया है नहीं तो कौन कसूर वार है वे खुद, गोमती या ग़रीब रजनी ? कोई पाप ही होगा उनका पिछले जन्म का नहीं तो रजनी उन्हीं के घर क्यों पैदा हुआ । हरिकान्त यह सब सोच कर विचलित हो उठे और डाक्टर को बुलाने के लिए दौड़े ।

भगवान ने दो को लेकर तीसरा फिर दिया तो, पर ऐसा कि जिसे देखकर कोई सन्न रह जाता तो कोई अपनी हंसी छिपाता । सास ननद ताने देने का कोई अवसर न जाने देतीं । गोमती का मातृत्व उसके मन में ही उमड़ कर रह जाता और जब निकलता भी तो आंसुओं के रूप में । कभी सोचती कि इससे तो वह पुत्रवती न होती तभी ठीक था । भगवान बेटी देते पर अच्छी भली तो देते ।

गोद का बालक उसकी तीसरी सन्तान था । दो बेटे पैदा होते ही चले गए । तीसरे के वक्त उसने बड़ी दवाई की, लेडी डाक्टर को दिखाती रही और उसे विश्वास था कि यह बच्चा तो बड़ी उम्र लेकर ही आयेगा । मैं पहले बच्चों की बार जितनी नासमझ थी, वैसी भी नहीं हूं और शुरू से ही जाक्टर की सलाह पर चल रही हूं । गोमती ने पुत्र का नाम भी सोच लिया था रजनीकांत ।

पर यह तो सब बीती बातें हैं । आज तो गोमती के सामने रजनीकांत एक कटु सत्य, रूपहीन, बुद्धिहीन बालक के रूप में उसके सामने मौजूद था ।

रजनी चाहे जैसा भी हो, पर उसके प्रति पिता का उपेक्षा भाव गोमती को ज़रा भी अच्छा न लगता । उसके पति न सिर्फ रजनी से ही घृणा करते बल्कि अब गोमती, रजनी को जन्म देने वाली मां, भी उन्हें न सुहाती । बात बात पर चिढ़ निकालते रहते । गोमती मन मसोस कर रह जाती ।

जाड़े के दिनों में जब गोमती छत पर बच्चे को मालिश करती होतीं तो, जवान पड़ोसिनें आपस में ठिठोली करतीं, "अरे यह किसको पड़ा है ?" और एक दूसरे की ओर देख कर हंसतीं, तथा आंखों ही आंखों में एक दूसरे को

बतातीं, "बन्दर को ।" गोमती सब समझते हुए भी नासमझ बनी रहती और बच्चे को मालिश करती रहती ।

जैसे जैसे दिन बीतते चले गए, गोमती के कुरूप बालक में बुद्धिहीन होने के लक्षण स्पष्ट होते गए। गोमती जगह जगह डाक्टरों के पास भागी फिरती पर सभी कहते कि बालक जन्म से ही ऐसा है,दवाएं कुछ नहीं कर सकतीं।

गोमती कैसी भी मानसिक यंत्रणा झेल रही हो पर दिन तो बीत ही रहे थे । पहले जहां गोमती एक पुत्र के लिए तरसती थी वहां अब हर दूसरे साल एक बेटा जनमती, सभी बच्चे स्वस्थ, सुन्दर समझदार पर रजनी तो अपनी ही जगह था । गोमती की सास रजनी को गोमती की 'कोख का कलंक' कहती नहीं तो उसी की कोख ने और भी तो हीरे जैसे लाल जने हैं । हरिकान्त को भी अपने दूसरे बेटों पर गर्व था पर यह 'पागल' रजनी उन्हें हर समय कांटे की तरहं चुभता रहता ।

बाबू हरिकान्त सब तरफ से संतुष्ट थे, तीनों बेटे पढ़ने लिखने में भी अच्छे थे, उनकी आमदनी भी बढ़ गई थी, सरकारी मकान भी मिल गया था, अपने समाज में सम्मान भी था, पर रजनी को वे अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान में बहुत बड़ी बाधा मानते थे । उनका कहना था कि रजनी के कारण उन्हें पग पग पर अपमानित होना पड़ता है "न जाने किन पापों का फल है जो इस जन्म में भोगना पड़ रहा है ।"

रजनी का हौआ उन्हें हर समय सताता रहता । वे ऐसी हीन भावना से ग्रसित हो गए थे जो उनके और रजनी दोनों के जीवन को झकझोरे डाल रही थी ।

रजनी मुहल्ले के लोगों के दिल बहलावे का साधन बन गया था । सभी हंसते और उसे छेड़ते । पान वाला, बिस्किट लेमन ड्राप बेचने वाला सबके साथ उसकी दोस्ती थी उनकी दुकान में बैठा लोगों का मनोरंजन करता रहता। हरिकान्त देखते तो आपे के बाहर हो जाते ।

रजनी में हरिकान्त की मनोस्थिति समझने की समझ तो थी नहीं, सिर्फ डरता था । इसलिए घर से भागा भागा फिरता । कपड़े गन्दे, छोटी आंखें, छोटा माथा, चिपटी नाक, बड़े बड़े दांत सबसे बेपरवाह रजनी, जब भी कोई बात शुरू करता, तो लार मुंह से बाहर निकल पड़ती, वह अपने बाएं हाथ से लार को पोछने की कोशिश में बांए गाल पर चुपड़ लेता, फिर हाथ को कमीज़ से पोंछता हुआ कहता, "मैं कोई ऐसा वैसा नहीं बाबू हरीकान्त का बेटा रजनीकान्त हूं ।"

लोगों को जब अपनी दुकान से रजनीकांत को भगाना होता तो कहते "भई रजनी, एक सवाल बता तो तुझे चवन्नी मिलेगी ।" रजनी कहता "नहीं नहीं मुझे सवाल नहीं आते ।" पर लोग उसे पकड़ कर सवाल पूछ ही लेते "बोल चार आम चार पैसे के तो चार पैसे के कितने आम ?" रजनी सवाल सुनते ही दुकान से कूदकर भाग खड़ा होता और लोग ठहाके लगाते ।

हरिकान्त की मारपीट, डांट डपट कुछ काम न आई रजनी दर्जा चार भी पास न कर पाया ।

हरिकान्त जगह जगह उसे काम सिखाने के लिए रखवाते, पर वह कुछ न सीख पाता, हां दूसरे काम करने वालों का मनोरंजन ज़रूर करता । रजनी की एक बात का सभी लोहा मानते कि कभी झूठ नहीं बोलता, लाला के यहां की दुकान की बात हो, दूसरों के चोरी करने की बात हो या अपने घर की बात हो, जो कोई जो कुछ पूछता उससे ज़्यादा बताने को तैयार रहता । लोग कहते अब इसकी 'मंद बुद्धि' कैसी 'तेज बुद्धि' हो गई है ।

रजनी को अपने भाइयों से भी बहुत प्यार था, उन पर गर्व भी करता था । उनके प्रति होने वाले सम्मान और सद्व्यवहार से भी उसे ईर्ष्या न थी । वह हमेशा उनकी मदद करना चाहता, सम्मान दिखाना चाहता, पर उसकी उपस्थिति ही उनके सम्मान और इज़्ज़त को बट्टा लगाने वाली होती, इसमें बेचारे रजनी का क्या दोष ?

किन्तु जहां तक खाने पीने का सवाल है इस मामले में ज़रा सी भी उपेक्षा उसे असहनीय होती । हर मौके पर बन्दर की तरह कूदता और मनमानी वस्तु लेकर चलता बनता । दूसरों के लिए भी कुछ छोड़ना होता है वह न जानता । ऐसे मौक़ों पर उसके पिता कभी कभी हृदय हीनता की हद तक कठोर हो जाते । छड़ी, चमड़े की पेटी, जो कुछ भी हाथ आता उससे पीटते । रजनी पिटता और चिल्लाता, "बचाओ, बचाओ, साले मुहल्ले वाले भी नहीं सुनते ।"

बहुत दिनों बाद रजनी को आजकल घर का वातावरण सुखद जान पड़ता । कभी कभी वह मां के पायताने आकर बैठ जाता और उसके पैर दबाने लगता, जहां वह थकी हुई सी लेटी रहती । रजनी ने मां की सहेलियों को कहते सुना था कि भगवान गोमती को इस बार बिटिया दे दे तो भाइयों को राखी बांधने वाली हो जाय । तभी अनजाने में ही रजनी ने अपने निश्छल मन की सारी ममता उस राखी बांधने वाली बिटिया को सौंप दी ।

गोमती जिन दिनों अस्पताल में थी, वह रात ग्यारह बजे तक अस्पताल के फाटक पर बैठा रहता । सुबह दस बजे खा पीकर फिर पहुंच जाता । वह

सोचता शायद अम्मा उसे बुला कर बिटिया को खिलाने के लिए कहें । नर्सें गोमती से कहतीं, "बीबी तेरा नौकर बड़ा अजीब है, दिन भर बाहर फाटक पर बैठा रहता है ।"

गोमती नज़र उठाकर नर्स का चेहरा देखती और चुप रहती, गोमती इतना साहस न जुटा पाती कि तुरंत कहे वह नौकर नहीं है, मेरा सबसे बड़ा बेटा है, इस बच्ची से पन्द्रह वर्ष बड़ा बेटा ।

गोमती जब बिटिया को लेकर घर आई, तो रजनी ऊपर छत पर खड़ा था । हर्षातिरेक से चिल्ला उठा "अम्मा बिटिया ले आईं ? टैक्सी वाले को सौ रुपया दो ।" गोमती सिर नीचा कर सर पर पल्ला सम्हालती सीढ़ियों पर चढ़ आई ।

अब रजनी को घर में, ऊषा के सिवाय कुछ भी अच्छा न लगता उसी के कामों में उलझा रहता, घर के और लोगों ने राहत की सांस ली । कुछ वर्षों बाद बीस वर्ष का रजनी और पांच वर्ष की ऊषा हम उम्र भाई बहनों की तरह खेलते रहते ।

धीरे धीरे ऊषा की मानसिक उम्र बढ़ने लगी । और भाइयों के विपरीत उषा के मन में दादा के लिए घृणा नहीं करुणा का आविर्भाव हुआ, वह धीरे धीरे उसकी परिचारिका और अभिभाविका दोनों बन गई । वह उसके कपड़े धोती, नहाने हजामत बनाने को मजबूर करती, उसकी पसन्द की खाने की चीज़ दूसरे भाइयों की नज़र बचा कर उसे देती । ऊषा के दूसरे भाई उसका मज़ाक़ उड़ाते, पिता डांटते पर ऊषा व्यंग और क्रोध दोनों सह लेती अपने मानसिक रूप से अपाहिज दादा के लिए ।

दिन बीतते चले गए, ऊषा बड़ी होने लगी, दूसरे भाई पढ़ लिख कर दूसरी जगहों पर नौकरी व्यवसाय में लग गए । घर में रह गए भाई बहन, रजनी और ऊषा । हरिकान्त की सबसे दुखती रग रजनी था । अपने भाग्य की इस विसंगति से वे कभी समझौता नहीं कर पाए, जीवन भर की इस विपत्ति के प्रति वे कभी मानवीय व्यवहार न कर पाए । इस बात को गोमती ऊषा सभी जानते थे पर गोमती में हरिकान्त की इच्छा के विरुद्ध उंगली भी उठाने की ताक़त न थी । हरिकान्त की लाड़ली ऊषा ही परिवार में जैसे तैसे संतुलन बनाए रखती, गोमती को भी दिलासा देती और रजनी को भी ।

उसी ऊषा के विवाह के लिए हरिकान्त आजकल दौड़ धूप में लगे थे। दान दहेज के साथ सुन्दर पढ़ी लिखी लड़की, सारे भाई बारोज़गार । एक रजनी ही हरिकान्त को बाधा जान पड़ता, वही पागल हमेशा से उनकी प्रतिष्ठा

को बट्टा लगाता रहा है, पता नहीं लड़के वाले, उस लड़की को स्वीकार करें या नहीं जिसका भाई जन्म से पागल हो ।

ऐसा नहीं कि ऊषा को अपने विवाह की इच्छा या ख़ुशी न हो, पर वह रजनी की ज़िम्मेदारी को अपना मानती । बाबू जी तो हमेशा से दादा के लिए बहुत कठोर रहे हैं और मां इतनी सीधी है कि सिवाय बाबू जी को संतुष्ट करने के और कुछ कर ही नहीं सकती । रजनी आजकल बहुत कमज़ोर हो गया था। अक्सर रात को बुख़ार आ जाता । ऊषा से कहता कि उसे कम्बल उढ़ा दे । भूख भी पहले जैसी नहीं, जो कुछ मिलता है थोड़ा बहुत बेमन से खा लेता है। ऊषा इन्हीं चिन्ताओं में घुल रही थी कि हरिकान्त ने एक दिन खुश ख़बरी दी कि शहर के ही दूसरे मुहल्ले में एक अच्छा लड़का मिल गया है, उन्होंने शादी तय कर दी है, जल्द ही वे लोग रस्म पूरी करने आयेंगे । उन्होंने गोमती से कहा कि वह जहां तक हो रजनी पर नज़र रक्खे, क्योंकि उन्होंने ऊषा के ससुराल वालों को उसके बारे में कुछ गोल मोल सा ही बताया है, शादी के बाद तो सब कुछ जान ही जायेंगे ।

सगाई की रस्म हो गई, घर में शादी की तैयारियां ज़ोर शोर से होने लगीं, सबसे अधिक रजनी खुश था । हर बात में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेना चाहता, लेता भी और सबकी डांट खाता ।

घर में डांट पड़ती तो रजनी दिन दिन भर घर से ग़ायब रहता । गोमती, हरिकान्त सभी के मन में डर बैठा था कि कहीं रजनी ऊषा कीं ससुराल पहुंच कर, उल्टी सीधी बातें कर रिश्ता न छुड़ा दे । जब शाम को रजनी घर आता तो काफी खुश नज़र आता, गोमती का मन किसी अनिष्ट की आशंका से कांप उठता पूछती "रजनी ! नीरव के घर तो नहीं गया था ?"

रजनी शान से गर्दन हिला कर कहता, "मैं किसी नीरव ईरव के घर नहीं जाता ।"

एक दिन हरिकान्त जब दफ्तर से लोटे तो क्रोध और क्षोभ के कारण उनके पैर ठीक से नहीं पड़ रहे थे । आज उन्हें अपने भावी दामाद का छोटा भाई मिला था, उसने बड़ा रस ले ले कर हरिकान्त को बताया कि हमें सब मालूम है कि आपके यहां क्या क्या तैयारियां हो रही हैं क्या क्या दिया जायेगा, रजनी हमें एक एक ख़बर देता रहता है । हम लोगों को बहुत मज़ा आता है रजनी बड़े गर्व से कहता है "हम भी तो कुछ देंगे भाई । हम भी तो बड़े भाई हैं लड़की के ।" हरिकान्त सुनते रहे और दुख और ग्लानि से गलते रहे । कहें क्या ?

दुर्भाग्य से हरिकान्त जैसे ही घर में घुसे, रजनी सामने पड़ गया, बिना कुछ कहे सुने उसकी पिटाई शुरू कर दी, पहले जूतों से, फिर अपनी ही पेटी उतार कर और बाद में छड़ी उठा कर हरिकान्त ने जैसे आज अपनी ज़िन्दगी भर की जलन निकाल ली । गोमती, ऊषा किसी की हिम्मत न थी कि पूछें कि क्या हुआ ?

उस दिन मालूम नहीं हरिकान्त की जी की जलन शान्त हुई या नहीं पर रजनी ने खाट पकड़ ली । मेहमान आ गए, मिलने वाले आए, पड़ोसी आए पर किसी को रजनी की चिन्ता क्यों होने लगी, अगर उसे बुख़ार है तो उतर भी जायेगा । यह तो सिर्फ ऊषा और गोमती ही जानते थे कि रजनी को क्या हुआ है । पास के हकीम जी की दुकान से बुख़ार की दवा आ जाती और गोमती समय निकाल कर रजनी को दवा दे जाती, ऊषा दूध पिला जाती, पर रजनी का बुख़ार उतरने ही न आता था, रजनी उठ बैठ न पाता और तेज़ बुख़ार में तपता रहता, बेहोशी में सिर्फ चिल्लाता 'बचाओ' 'बचाओ' ऊषा भरसक रजनी को सम्हालती और पिता की प्रतिष्ठा को भी बचाती ।

हरिकान्त ने तो सोच ही लिया था कि शायद इस वर्ष भगवान उन्हें जीवन भर की कुढ़न से छुटकारा दिला ही दें । कभी सबकी नज़र बचा कर रजनी के कमरे में आते उसे देखते और ठंडी सांस भर कर कहते "हरि इच्छा भावी बलवाना ।" वे भला भावी को कैसे टाल सकते थे, क्या वैद्य और क्या डाक्टर ।

घर में चौक पूरे गए, सुहागिनों ने ऊषा को हल्दी चढ़ाई, तेल चढ़ाया, सुहाग दिया, मंत्रोच्चार के साथ भांवरें पड़ीं, बारात की खूब ख़ातिरदारी हुई, देना लेना हुआ और धीरे धीरे बिदा की बेला भी आ गई ।

ऊषा सबसे मिली भेंटी फिर अम्मा से लिपट कर धीरे से बोली 'अम्मा! दादा' गोमती ने सोचा विदा की बेला में ऊषा को रजनी से मिलने दे पर पति की कठोर आज्ञा को याद कर समय की नज़ाकत को देख और पति के तेवर देखकर, रजनी के कमरे की ओर बढ़ते कदम पीछे लौट आये ऊषा नीरव के साथ अपने घर चली गई ।

रजनी जिंसने ऊषा की विदाई के बारे में कभी कुछ सोचा न था, इस समय फूट फूट कर रो रहा था । तेज़ बुख़ार, उठने बैठने से लाचार रजनी । नहीं तो क्या ऊषा को जाने देता ? यही दुख उसे साल रहा था ।

ऊषा को गए चार दिन हो गए थे, रजनी का खाना पीना सब छूट गया था, उसकी हालत आज अच्छी न थी, गोमती की अनुभवी आंखें सब देख

समझ रही थी । उसका कलेजा धड़क रहा था । जिसके मरने की कामना हज़ार बार कर चुकी थी वह शायद अब बचेगा नहीं । गोमती कांप उठी । रजनी की आवाज़ बिलकुल क्षीण हो गई थी, वह क्या कह रहा है किसी की समझ में नहीं आ रहा था ।

हरिकान्त इस सबसे निर्लिप्त नहीं थे, कहीं अपने को दोषी भी पा रहे थे और गोमती से आंखें मिलाने का साहस नहीं कर पा रहे थे। सब भगवान की माया है नहीं तो कौनकसूर वार है वे खुद, गोमती या ग़रीब रजनी ? कोई पाप ही होगा उनका पिछले जन्म का नहीं तो रजनी उन्हीं के घर क्यों पैदा हुआ । हरिकान्त यह सब सोच कर विचलित हो उठे और डाक्टर को बुलाने के लिए दौड़े ।

गोमती रजनी के सिरहाने बैठ गई और उसका सर अपनी गोद में ले लिया । रजनी प्रकाशहीन नेत्रों से मां की ओर देखता रहा और उसका सिर एक ओर लुढ़क गया । गोमती समझ गई, बचाओ बचाओ की गुहार लगाने वाला उसका बेटा आज समचमुच बचा लिया गया था । गोमती के ह्रदय की गांठ आज कलेजा फाड़ कर बाहर आना चाह रही थी । उसे तथा उसके परिवार को अपमानित करने वाला चला गया था । आज बत्तीस वर्ष बाद उसके कोख के कलंक ने स्वयं ही अपने को मिटा लिया था । गोमती चिल्ला चिल्ला कर रो रही थी "हाय ऽ ऽ मैंने, 'अपने बेटे को' बहुत दुख दिए ।" आज उसकी स्वीकारोक्ति स्वयं ही फूट पड़ी थी बिना किसी डर, किसी भय के ।

●●●

पछतावा

कालेज का पहला साल उसने कैसे गुज़ारा वही जानती है । सबसे ज्यादा उसे अपनी मां पर गुस्सा आता जिसने उसमें किसी से बात करने का भी साहस न रहने दिया । फिर पिता की कंजूसी पर झुंझलाती जिन्होंने उसे कान्वेंट में इसलिए नहीं पढ़ाया कि वहां फ़ीस बहुत लगती है । नहीं तो क्या वह फटाफट अंग्रेज़ी न बोल पाती ? कटे बालों को झटका दे कर, लड़कों को अपनी ओर आकर्षित करने में क्या बहुत बुद्धि की ज़रूरत होती है ?

दहिसर की चाल को छोड़कर अरुणा के पिता जब बोरिविली शिंपोली गांव के फ़्लैट में आए तो बिल्डिंग नं. ३ में आने वाले वे पहले व्यक्ति थे । आस पास बहुत सी बिल्डिंग बन रही थीं जिनमें बहुत से बने अध बने फ्लैट खड़े थे। कंकरीट के इस जंगल में आदमियों के नाम पर सोहन सेठ उसके कर्मचारी और मज़दूर ही दिखाई देते थे । फ़्लैट में रहने वालों में, अरुणा, छोटा भाई वरुण, मां और पिता जी ही थे । पिता जी भी घर का सब इन्तज़ाम करवा कर अपनी नौकरी पर चले गए । उनकी तो नौकरी ही ऐसी थी, तीन महीने की छुट्टी और फिर ६ महीने पानी के जहाज़ पर देश विदेश घूमना ।

पिता जी के जाने के बाद मां के पास सिर्फ तीन काम रहते थे, पहला कुछ पेट भरने के लिए बना लेना । वह कहती थी कि घर में आदमी न हो तो कुछ बनाने का जी ही नहीं करता । दूसरे नम्बर पर वरुण को सम्हालने के काम में जी जान से जुटी रहती । उसके विचार में टी.वी. देख देख कर, क्रिकेट खेल खेल कर वरुण बिगड़ रहा है इसीलिए उसके नम्बर हमेशा कम आते हैं। उसे पकड़कर पढ़ने को बैठाना बहुत ज़रूरी है । तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण काम था अरुणा की गतिविधियों पर कड़ी नज़र । वह कहां गई थी ? किससे और क्या बात कर रही थी ? क्यों गई थी ? आदि आदि ।

दहिसर की भीड़ भाड़ वाली चाल को छोड़कर यहां सुनसान में आने से मां की अरुणा के बारे में चिन्ता कम हो गई थी पर वरुण काबू में न आता। साइकिल उठाता और ग़ायब । खूब भूख लगने पर ही घर आता, हाथ पैर धो

सीधा रसोई में जाता और जो भी मिलता भर पेट खाता, लम्बी तान कर सोता। न मां से मतलब न अरुणा से ।

अरुणा से निश्चिन्त हो कर उसकी मां अचार, साबूदाने के पापड़, आलू के चिप्स बनाने सुखाने में लगी रहती । कभी कांदीविली की मंडी से सस्ती सब्ज़ियां लाती बीनती, धोती, पौली बैग में भरती और फ्रिज़ में रखती । वरुण को छोड़ कर अपने नए खरीदे मकान में वह हर तरह से संतुष्ट थी ।

जितना मां संतुष्ट,अरुणा उतनी ही बेचैन, व्याकुल और अकेली थी । यह सब नया माहौल उसे खाने को दौड़ता । वहां चाल में तो वह भीड़ भाड़ में रहते हुए भी अकेली रहने को विवश थी । मां की दी हुई इसी विवशता के कारण वह कालेज में भी किसी को अपना संगी साथी, अंतरंग मित्र न बना सकी। जबकि लड़के लड़कियां मिलजुल कर हंसते, एक दूसरे का मज़ाक़ उड़ाते, अध्यापकों की खिल्ली उड़ाते और एक दूसरे की दोस्ती का दम भरते। फिर दो के बीच एक मित्र को पाने के लिए जो खींच तान चलती उसे वे लोग एक खेल समझते या कभी चुनौती । दोनों ही उन्हें स्वीकार थे । उनके चेहरों पर हमेशा दुनिया को ठोकर मारने का भाव छिपा रहता ।

इधर अरुणा है कि दुनिया का डर ही उसके सिर पर सवार रहता । अपने संगी साथियों की आज़ादी देख कर सहम जाती, उनके ठहाकों के बीच दबी, सकुची, नव वधू सी अरुणा मन ही मन ललचाती पर किसी से नज़रें मिलाने का साहस न कर पाती ।

नज़रें चुराने को लेकर अगर कोई लड़का उसे छेड़ता तो पसीने पसीने हो जाती । सब कुछ अच्छा भी लगता पर ऊपर से झूठ बोलती उसे यह सब अच्छा नहीं लगता ।

कोई लड़की इतराती "ए उदय ! अरुणा को परेशान क्यों करते हो ? तुम्हें मालूम है उसे 'ऐसी वैसी' बातें पसंद नहीं ।"

"ऐसी वैसी का क्या मतलब ?"

"मतलब क्या ? तुम 'ऐसी वैसी बातें' नहीं जानते ?"

उदय गम्भीर होकर कहता "जानता बहुत कुछ हूं पर 'ऐसी वैसी बातें' नहीं ।" सभी हंस पड़ते ।

अरुणा पानी पानी हो जाती पर चाहते हुए भी किसी लड़के से बात न कर पाती । कभी आदर्श बाला की उपाधि मिलती तो कोई दिल जला उसे 'ऐसी वैसी' लड़की के नाम से पुकारता ।

कालेज का पहला साल उसने कैसे गुज़ारा वही जानती है । सबसे ज्यादा उसे अपनी मां पर गुस्सा आता जिसने उसमें किसी से बात करने का भी साहस न रहने दिया । फिर पिता की कंजूसी पर झुंझलाती ज़िन्होंने उसे कान्वेंट में इसलिए नहीं पढ़ाया कि वहां फ़ीस बहुत लगती है । नहीं तो क्या वह फटाफट अंग्रेज़ी न बोल पाती ? कटे बालों को झटका दे कर, लड़कों को अपनी ओर आकर्षित करने में क्या बहुत बुद्धि की ज़रूरत होती है ?

बुद्धि तो अरुणा के पास बहुत है पर सिर्फ़ सपने देखने की । अरुणा ऐसे ऐसे दिवास्वप्न संजोती कि वे उसके रोम रोम में रच बस जाते । कभी कालेज की सबसे सुन्दर और पढ़ाकू लड़की बन, तो कभी भारत सुन्दरी, विज्ञापनों की रानी बन जाती । जब विज्ञापनों में आना है तो फ़िल्मों में आना ही चाहिए। फिर क्या अरुणा के डंके पिट जाते । सबसे अच्छा ऐक्टिंग करने वाली, अलग थलग ग़म्भीर और करेक्टर वाली अभिनेत्री बनती । फ़िल्म संसार की बुराइयों से दूर एक अनोखी एक्ट्रेस । गाड़ियां पर गाड़ियां खरीदती । एक के बाद एक बंगला बनवाती । एक वरुण के लिए एक मां बाप के लिए । पैसे पानी की तरह बहाती और घंटों आसमान में उड़ती रहती फिर भी वक्त है कि काटे नहीं कटता । जब भी खिड़की से बाहर नज़र डालती पेड़ पौधों पर धूप नज़र आती। अभी तो बहुत दिन बाक़ी है शाम हो तो ज़रा बाहर निकले ।

पता नहीं कब इस बिल्डिंग में लोग आयेंगे ? सामने वाले फ़्लैट में एक लड़का आया तो है । अकेला लगता है । घर का साज़ सामान तो ऐसा ही है कि शादी न हुई हो । पढ़ा लिखा भी जरूर होगा । स्मार्ट भी है । इतना सोचते ही फिर दिवास्वप्न आ धमके ।

'हम दोनों में खूब दोस्ती हो गई है । पहले तो हमने मां की आंखों में खूब धूल झोंकी । फिर जब बात आपस में बन गई तो हिम्मत करके कह दिया कि हम दोनों ने तय कर लिया है कि शादी करेंगे । मां पूछेगी "ज़ात क्या है?" "मुझे नहीं मालूम ।" "कितना कमाता है ?" "मुझे नहीं मालूम ।" "कहां का रहने वाला है ?" "मुझे नहीं मालूम ।" मां मुझ दब्बू लड़की में इतना साहस देख कर दंग रह जायेगी । फिर कहेगी "उसके बारे में तुझे कुछ भी नहीं मालूम फिर भी शादी करेगी उससे ?"

सोचते सोचते अरुणा की हंसी फूट पड़ती । पर कहानी को अधूरा तो छोड़ेगी नहीं अरुणा । अरुणा को उस लड़के से शादी करनी थी सो कर ली । मां के फ़्लैट के सामने वाले फ़्लैट में ही अरुणा का घर बस गया । सब कुछ छुट्टियों में ही हो गया । अरुणा कालेज गई तो लोगों की आंखें फटी की

फटी रह गईं । यह गांवड़ी अरुणा कितनी मौडर्न हो गई और शादी भी कर ली।

कोई पूछेगी "तू बड़ी तेज़ निकली अरुणा । हम तो यूं ही रह गए ।" "क्या करता है तेरा वह ?" दूसरी बोलेगी ।

"साइंटिस्ट है" अरुणा शान से कहेगी ।

बाप रे ! सारी लड़कियों और लड़कों की सांस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह जायेगी ।

मां की आवाज़ अरुणा के पंख कतर देती है । वह आसमान से धरती पर आ गई । खीजी आवाज़ में बोली क्या है ?

"अपने ऊपर वाले फ्लैट में लोग आ गए हैं । मैं वहीं जा रही हूं। वरुण आए तो खाना दे देना ।"

अरुणा सोचने लगी हां कुछ लोग आए तो हैं। एक लड़की भी है मेरे ही बराबर की । देखा तो था पर ध्यान नहीं दिया । अरुणा का ध्यान तो सामने वाले घर और उस लड़के पर ही केन्द्रित रहता है भले ही वहां ताला बन्द हो ।

शिल्पा से दोस्ती होने में ज़्यादा वक्त नहीं लगा । भा गईं दोनों एक दूसरे को । हम उम्र एक से परिवेश में पली बढ़ीं, एक सी तमन्नाएं, एक से सपने, जल्द ही दोनों अंतरंग मित्र हो गईं ।

"शिल्पा चल उधर चलते हैं ।"

"कहां ?"

"इस सामने वाले फ़्लैट के पीछे ।"

"वहां क्या है ?"

"वहीं दिखाऊंगी न ।"

"अच्छा ! तो उस लड़के घर की तलाशी लेनी है ।" शिल्पा कुछ समझते हुए बोली ।

"तलाशी कैसी ? घर में तो ताला बन्द है । हां हम खुली खिड़की से झांक ज़रूर सकते हैं ।"

"अरे अरुणा ! इसके पास तो बड़ी बड़ी पेंटिंग्स हैं । कितनी शानदार। यह तो चित्रकार निकला । कमरा तो देख पेपर ही पेपर बिखरे हैं । क्या करे बेचारा काम पर भी तो जाना है उसे ।"

"बेचारा क्यों ? बड़ी हमदर्दी दिखा रही है । मैं तो कभी न कहूं बेचारा।" अरुणा तुनक कर बोली ।

"चल तू ही दे दे कुछ नाम । अब उसका असली नाम तो हम लोगों को पता नहीं । इस सुनसान बिल्डिंग को आबाद करने कोई खुदा का बन्दा आया तो । शाम को रोशनी तो होगी ।"

"नाम भी दे देंगे यार । पहले ज़रा खिड़की से झांक कर कमरे का इन्सपैक्शन तो करें ।" अरुणा ने नीचे झुक कर ज़मीन से कंकर वाली मिट्टी उठाई और खिड़की से उस 'कलाकार' के कमरे में फेंक दी ।

"अरुणा ! ये क्या हो रहा है ?" शिल्पा ने अरुणा को आंखें दिखाईं।

"परिचय है । हमारा परिचय । जब शाम को आयेगा तो पहचान जायेगा हम लोगों को ।"

फिर शाम को दोनों खिड़की पर बैठी उसकी राह में आंखें बिछाए रहीं। उसके खिड़की के पास पहुंचते ही शिल्पा बोली "कलाकार जी पधार रहे हैं ।"

लड़के ने घबरा कर खिड़की की तरफ देखा और नज़रें झुका कर आगे बढ़ा ही था कि अरुणा की कविता सुन कर ठिठक गया । जूते के फ़ीते बांधने के बहाने रुक गया । कविता चल रही थी :-

"ये बेचारे बोझ के मारे हंसना भूल गए ।"

हंसना तो शायद सचमुच ही भूल गया था प्रदीप । याद दिलाने का शुक्रिया अदा करने के लिए अरुणा से नज़र मिलाई और चला गया ।

छोटे मोटे हास परिहास का सिलसिला किसे न अच्छा लगेगा । प्रदीप को भी अच्छा ही लगा । पर कमरा खोलते ही मूड ख़राब हो गया । उसकी नई पेंटिंग पर ढेर सारी मिट्टी गिरी हुई थी । ओह फूहड़ परिहास । बेवक़ूफ़ लड़कियां ।

धीरे धीरे और भी लोग आने लगे । छः महीने में बिल्डिंग नं. ३ के क़रीब क़रीब सारे फ़्लैट भर गए । लोगों के आपस में परिचय हुए, मराठी मराठी, गुजराती गुजराती, पंजाबी पंजाबी, बंगाली बंगाली से ज्यादा घनिष्ठ होने की बात दिखाने लगे । खाने पीने की चीज़ों का लेन देन होने लगा, ताक झांक शुरू हुई, एक दूसरे के सात पुश्तों की ख़बर रखने की भी कोशिशें हुई । फिर भी सबके बावजूद सभी मिल कर रहना चाहते थे और मिल कर उत्सव त्योहार मनाना चाहते थे । इसके लिए नव वर्ष का दिन सबसे अच्छा था जिसे सभी खुशी खुशी मनाना चाहते थे । बिल्डिंग की पांचवी मंजिल की बड़ी सी छत पर पहली जनवरी मनाने का निश्चय हुआ । सबका परिचय भी हो जायेगा और

खाना पीना भी होगा कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम भी होने थे । इन सबके लिए चंदा इकट्ठा करना ज़रूरी था । अरुणा के पिता आए हुए थे और सभी कामों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे । अरुणा और शिल्पा चन्दा इकट्ठा करने के काम में जुट गईं ।

एक दिन सुबह सुबह प्रदीप के घर पहुंचीं और चंदे की मांग की । प्रदीप ने दोनों के उत्साह पर पानी फेर दिया और चंदा देने से साफ़ इन्कार कर दिया "मैं तो उन दिनों बम्बई में ही नहीं रहूंगा । छुट्टी पर जा रहा हूं ।" बेचारी दोनों अपना सा मुंह लेकर चली आईं । अरुणा को प्रदीप से यह उम्मींद न थी । अगर वह इस समय टाल भी देता तो अरुणा कहीं से भी देती । प्रदीप के नाम से खुद अपने पास से देने की कोशिश करती । ख़ैर उसकी मर्ज़ी । दो दिन बाद दोनों ने देखा कि सचमुच ही प्रदीप कहीं बाहर चला गया है । सांस्कृतिक कार्यक्रमों की तैयारियां होती रहीं । दिन कटते रहे ।

पर यह क्या ? ३० दिसम्बर के दिन प्रदीप के घर के सामने टैक्सी रुकी। अरुणा खिड़की पर खड़ी हो गई । प्रदीप ने टैक्सी से नई नवेली, नाजुक सी लड़की को उतारा, सामान उतारा और ताला खोल कर दोनों अन्दर चले गये।

अरुणा हक्की बक्की रह गई । मां के घर के सामने अपना घर खुद अपने से बसाने का सपना चकना चूर हो गया । सारा दिन अरुणा को ऐसा लगता रहा जैसे उसका कुछ खो गया हो । सोच भी न पा रही थी कि क्या हो गया ।

रात को शिल्पा आई, रहस्य खोलने के ढंग में बोली "वह साइंटिस्ट शादी करके आ गया है मालूम है तुझे ?"

"मालूम है ।"

"उसकी बीवी को देखा ?"

"हां । " अरुणा ने छोटा सा उत्तर धीमे स्वर में दिया ।

"सुन्दर है न ?" शिल्पा उत्साह में बोली ।

"होगी ।"

"शादी होते ही अपने कलाकार से इतनी इतनी उदासीन हो गई ।"

"छोड़ भी यार । कुछ और बात करते हैं ।" अरुणा ने बात बदली।

पहली जनवरी की रात को बिल्डिंग के गृहस्थ लोगों ने सोचा चलो नव दम्पत्ति को भी आमंत्रित कर लेते हैं । अब तो शादी करके वह भी हमारी

ही बिरादरी में शामिल हो गया है । किसी ने कहा उसने चंदा नहीं दिया था।

फिर क्या हुआ, समझ लो हम लोग नव विवाहित जोड़े को दावत दे रहे हैं । ऊपर दरियां बिछी, संगीत के लिए हारमोनियम, तबला पहुंचाया गया। बच्चों ने एक मराठी नाटक खेला। शास्त्रीय संगीत से लेकर पॉप रैप सब कुछ हुआ फिर खाना पीना, मिलना जुलना । सभी प्रदीप और उसकी पत्नी को आशीर्वाद दे रहे थे । दोनों का अच्छा स्वागत हुआ ।

अरुणा ने सब कुछ देखते हुए भी न कुछ देखा न कुछ सुना । उसने तो यही देखा कि उसका कलाकार आज कितना बदल गया है । सलीक़े से पहने क़ीमती कपड़े, हाथ में घड़ी, उंगली में क़ीमती अंगूठी और महंगे चमकते हुए जूते । कैसे फटे जूते पहन कर घूमता था पहले ।

अरुणा को वहां बैठना अच्छा नहीं लग रहा था । प्रदीप की पत्नी तो उसे ज़रा न सुहाई । वह पूरे वक्त खाने पीने का सामान ऊपर लाने, पानी लाने, ग्लास लाने आदि के कामों में कभी नीचे जाती कभी ऊपर आती रही । जब भी वह नीचे जाती या ऊपर आती, सीढ़ियों पर पड़ी जूते चप्पलों की भीड़ में, प्रदीप के चमकते जूते बार बार उसके पैरों से टकरा जाते ।

प्रोग्राम अपने पूरे ज़ोर पर था । सभी अपनी अपनी तरह प्रोग्राम में पूरी तरह शरीक थे, पर अरुणा छत के एक अंधेरे कोने में खड़ी खड़ी चुपचाप नीचे की तरफ देख रही थी ।

नं. ३ की बिल्डिंग के बगल में नं. ४ की बिल्डिंग बन रही थी इसी बिल्डिंग में कुछ दूरी पर पानी से भरा एक टैंक था । जिससे मजदूर पानी लेते थे । अरुणा धीरे से सीढ़ियों के पास गई और फिर अंधेरे में आकर खड़ी हो गई। टैंक के पानी में एक आवाज़ हुई 'छपाक' फिर दूसरी आवाज़ हुई 'छपाक'।

अब अरुणा खड़ी खड़ी थक गई थी । बच्चों का नाटक चल रहा था। बैठ कर देखने लगी ।

नाटक ख़त्म हुआ । थोड़ी बात चीत करते हुए धीरे धीरे लोग उठने लगे । प्रदीप और उसकी पत्नी भी उठे । अरे यह क्या ? प्रदीप के तो जूते ही ग़ायब हैं । सबने अपनी अपनी सामर्थ्य भर खोजा पर कहीं नहीं मिले । 'कहां उतारे थे ।' 'अरे यहीं ।' प्रदीप की पत्नी बोली "मेरी चप्पल के पास ही उतारे थे, चप्पल तो पड़ी है ।"

इन्तज़ाम करने वाले दुखी थे, शर्मिन्दा थे । आखिर गए तो कहां गए जूते ?

कितनी बुरी बात है कि अपनी बिल्डिंग के पहले फ़ंक्शन में ऐसा हो जाए।

अच्छी चपत पड़ी बेचारे को नए साल के दिन । प्रदीप की पत्नी अंधेरे में जहां अरुणा खड़ी थी ज़मीन में टटोल टटोल कर जूते खोजने लगी ।

अरुणा वहां से हट गई और दूर जहां शिल्पा खड़ी थी खड़ी हो गई।

शिल्पा ने अरुणा की ओर देखा और अरुणा की आंखों में आंखें डाल कर पूछा "तूने देखे थे जूते ? कैसे थे ? मैने तो देखे भी नहीं कैसे थे ?"

अरुणा भय से मन ही मन कांप रही थी । शिल्पा के पूछते ही वह शिल्पा के कंधे पर सिर रखकर रोने लगी कि प्रदीप की पत्नी मुझे दोष दे रही है ।

ज़्यादा तर लोग चले गए थे । प्रदीप और उसकी पत्नी दोनों अरुणा और शिल्पा के पास आ गए । प्रदीप ने पूछा "ये क्यों रो रही हैं ?"

शिल्पा ने बताया कि अरुणा कह रही है कि प्रदीप की पत्नी ने कहा है "जूते अरुणा ने फेंक दिए हैं ।"

प्रदीप ने क्षमा मांगने वाली नज़रों से अरुणा की ओर देखा और धीरे से पत्नी से बोला "तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए ।"

प्रदीप की पत्नी ने पति की ओर देखा, फिर खीज में भरी बोली "मैं कह ही कैसे सकती हूं ? जब मैंने उसे जूते फेंकते देखा ही नहीं ।"

●●●

दर्प

पति की नज़रें भी पढ़ती हूं । उन आंखों में दया है ? कहीं उपहास की झलक तो नहीं ? पछतावा भी तो दिखाई देता है झांकता हुआ ? कहीं उनकी आंखों में मेरे अंगारे से दहकते दर्प को तोड़ने का संतोष तो नहीं ? अहं मंडित दर्प ही ले डूबा मुझे ?

दो वर्षों बाद घर लौटी हूं । सब कुछ नया नया लग रहा है, बड़ा प्यारा। घर की हर चीज़ से मिल भेंटने को जी चाह रहा है । वह सब कुछ जो मैं छोड़ कर चली गई थी, मुझे अपनाने को आतुर है ।

मेरे बच्चों की आकुल व्याकुल नज़रें कितना कुछ कह रही हैं । उन नज़रों में कभी भय की रेखा कांप उठती है, अगर फिर मम्मी पहले जैसी हो गई तो ? वे पास आते हैं, कुछ कहना चाहते हैं, शायद बताना चाहते हों कि आपके जाने के बाद क्या हुआ । कुछ कहते कहते सहम जाते हैं, ओठों तक आई हंसी न जाने किस आशंका से विलीन हो जाती है ।

कुछ साल पहले, मेरा मन, मस्तिष्क एक भयंकर आग में जल उठा था, बड़े बड़े फफोले पड़ गए थे जिनकी पीड़ा असहनीय थी । मानसिक त्रास मुझे निगल रहा था । यही त्रास झेलते झेलते मैं होशो हवास खो बैठी ।

पिछले दो वर्षों में फफोले ठीक हुए हैं, घाव भर गए हैं । कमज़ोरी की दशा में धीरे धीरे स्वस्थ होने का सुख अनुभव कर रही हूं । शाम को नहा धोकर बाहर अपने छोटे से लान में टहलना अच्छा लग रहा है । पास ही सड़क पर खड़ी एक आया और दो नौकरानी बातें कर रहीं थी । फुसफुसाहट सुनाई दी "यह औरत अभी थोड़े दिन पहले पागल ख़ाने से आई है ।"

"अच्छा" दूसरी आंखें फाड़ कर बोली "मुझे तो बड़ा डर लगता है पागलों से ।"

"उंह, पागल ! ऐसी वैसी पागल । बड़े बड़े गुल खिलाए हैं इसने । हमारी मेम साहब के साथ तो उठना बैठना है इसका ।"

"बड़े घरों की बड़ी बातें, यहां फुरसत ही किसे है कि पागल बन कर

बैठें । दिन रात खटती हूं, तो बच्चों को दो रोटी मयस्सर होती है ।" आगे नहीं सुना गया, अन्दर चली गई ।

यह सच है कि मैं अपने होशो हवास खो बैठी थी । डाक्टरों ने पागल क़रार दिया था । पति मुझे मेंटल-अस्पताल में पहुंचा आए थे । अब दो वर्षों के बाद लौटी हूं ।

आशा बता रही थी, "ज़ब वे आपको ले जा रहे थे, तो बुत हो गए थे। चेहरे पर कोई भाव नहीं । न दुख, न पछतावा और न तुमसे पीछा छुड़ाने की ख़ुशी ही थी । बच्चे ! वे तो ऐसे रोए थे जैसे तुम्हारी लाश उठ रही हो" । आशा और भी बहुत कुछ बताती रही पर मैं कुछ भी सुन नहीं रही थी ।

कह सुनकर आशा चली गई, पर मेरे मन में हज़ार हज़ार तूफ़ान उठा गई । छोटे, बड़े, सैकड़ों प्रश्न मेरे चारों ओर फन उठा कर खड़े थे ।

आख़िर मैं अपने को सम्हाल क्यों न पाई ?

यह पलायन था ? मुझमें समस्याओं से जूझने का बल न था ? क्या पागल होकर दुनिया से दूर भागना चाहती थी ?

पति से बदला लेने के लिए पागल हो गई ? उन्हें त्रास देना चाहती थी ? पर त्रास तो स्वयं मैंने भी झेला, कांप उठती हूं याद करके ।

कहां भूल हो गई मुझसे ? मेरी अभिन्न मित्र आशा भी न बचा सकी मुझे गर्त में जाने से । आशा मेरी हर गति विधि की साक्षी, निरंतर बहते आंसुओं को पोंछने वाली, तू क्यों न मुझे टूटने से बचा सकी ? मेरा अंगारे सा दहकता अहं ही भटका ले गया मुझे ?

यह सब लिख कर कोई कहानी लिखने नहीं जा रही हूं, लिखने का अर्थ है समझने का प्रयास, समझना चाहती हूं, अनगिनत प्रश्नों का स्पष्टीकरण चाहती हूं ।

यह कहानी उस औरत की कहानी है, जो हमेशा नेक बनना चाहती थी । आदर्श नारी बन कर पूजा करवाना चाहती थी । विशिष्ट होना चाहती थी, साधारण नहीं ।

तो क्या पागल बन कर विशिष्ट बनी थी ?

मेरी दादी जो स्वयं एक विशिष्ट महिला थी मुझे भी कुछ ख़ास ही बनाना चाहती थी, यम से लड़कर पति के प्राण बचाने वाली सावित्री या बन बन पति के साथ भटकने वाली सीता या फिर तप से महादेव को जीतने वाली पार्वती । ये सभी महिलाएं जीतने वाली थी । हारने वाली नहीं ।

जब दादी से गान्धारी की कहानी सुनी तो अन्तर तक भीग गई। लगा मुझे अपना लक्ष्य मिल गया । मुंह से बोल न फूटे पर मन तो उस अन्धे लाचार तक पहुच गया जिससे मुझे शादी करनी थी ।

सोचा अगर मैं अन्धे आदमी से शादी कर लूंगी तो फिर जीवन भर के लिए आंखों पर पट्टी बांध लूंगी । लोग मुझे कलियुग की गान्धारी के नाम से जानेंगे ।

जब भी एकांत होता मैं झट से आंखों पर पट्टी बांध लेती । एक दिन मां ने देख लिया ।

"अनु यह आंखों पर पट्टी क्यों बांधी है ?"

पहले तो चुप रही, फिर डरते डरते बोली "मैं तो गांधारी बन रही थी।" मां ने हल्की चपत लगा कर कहा "पागल कहीं की ।" क्या मां का कहना सही था ? हां मैं पागल थी, विशिष्ट बनने की दीवानी थी । कुछ बनना चाहती थी । गान्धारी, सावित्री जैसी महान ।

न किसी अंधे आदमी से मेरी शादी हुई न ही आंखों पर पट्टी बांधने की नौबत आई । हज़ारों नैतिक आदर्शों के गहने पहने, सती अनुसूया की सीख लिए, पन्द्रह वर्ष की उम्र में पति के घर में प्रवेश पा गई ।

द्वार पूजा के समय भाभी ने सीख दी "अनु दूल्हे के मुंह पर चावल फेंक कर मारो, ऐसा करने से पति हमेशा वश में रहता है ।"

जो ब्याहने आया था न तो राजा राम था और न ही सत्यवान पर जो आया है वह तो मेरा ही देवता है, वह तो पूजा से ही वश में होगा, फट से चावल चरणों में चढ़ा दिए ।

"पगली कहीं की ।" सहेलियां खिलखिलाईं ।

रामायण महाभारत की दुनिया में पल कर बड़ी हुई पन्द्रह वर्ष की लड़की ने ससुराल आते ही समझ लिया कि दुनिया बहुत बड़ी है इसके हज़ार रूप रंग हो सकते हैं और पति गृह की दुनिया तो बिलकुल ही अलग थी मुझे बहुत कुछ सीखना होगा और सीखूंगी भी ।

पति के बौद्धिक ज्ञान और आधुनिक विचार धारा के साथ मेरी सनातन विचार धारा का मेल कैसे होगा मैं न जानती थी । बस जी जान से पति और उसके विचारों को समझने का प्रयास करती । जी चाहता पति की राजनीतिक और साहित्यिक चर्चाओं में बराबरी से भाग लूं । मुझे गर्व था कि पति हमेशा अपनी पत्नी को बराबरी का दर्जा देने की बात करते हैं ।

अपनी कमियों का मुझे पूरा एहसास था पर अपनी खूबियों से अनजान

न थी । अपनी अच्छाइयों पर गर्व करती थी और पति से सराहना की-प्रशंसा की अपेक्षा भी ।

मेरे पास रूप रंग दोनों थे पर जादू न था । आदर्शों और सादगी के मंत्रों में इस क़दर डूबी थी कि जादू सीखने का कभी ध्यान ही न आया था । न इनको मोह पाती न बांध पाती । ये सती-सावित्री कहकर मेरा मज़ाक़ उड़ाते।

जहां तक मुझे याद है इन्हें मेरा एक ही रूप भाया था । जिसे थोड़ा सम्मान और प्यार मिला था । वह था नई बातों को सीखने कीं ललक रखने वाली शिष्या का रूप ।

विवाह के बाद ही हम दोनों ने अपना छोटा सा घर बसा लिया था। न सुख सुविधाओं को देने वाले साधन थे न पैसा ही था और न किसी का सर पर हाथ ही था पर हम दोनों के पास ढेर सारे आदर्श थे, कुछ कर गुज़रने की तमन्नाएं थी । मर मिट कर नया भारत बनाने के सपने थे । इन सपनों को पूरा करने में हम दोनों ही जुटे रहते पर अपनी अपनी तरह ।

मैं ज़िन्दगी में पूरी तरह व्यस्त थी । संघर्षों से आत्मबल पा रही थी। पर कुछ था जो मन में चुभता रहता । मेरा अहं हमेशा अतृप्त रहता उसे दुलारने वाली कोई बात कभी न होती, लाड़ दुलार, मान मनौवल सबके लिए तरसती रहती । मेरा आपा दुखी था और मैं खुश थी ।

कहते हैं जब मुसीबत आती है तो चारों तरफ से आती है । हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ । ये उन दिनों बहुत व्यस्त थे, परेशान थे, एक बड़ी हड़ताल चल रही थी जिसका संचालन ये ही कर रहे थे । हड़ताल असफल होने की पूरी सम्भावना थी । नौकरी तो पहले ही छूट चुकी थी । इन्हें बाहर हर तरह का अपमान झेलना पड़ रहा था । राजनीतिक ज़िन्दगी और मौत का सवाल था । इनके अपने ही साथी धोखा दे गए थे । पत्नी, घर और बच्चे की ओर ध्यान देने का न समय था और न मानसिक शक्ति ही बची थी ।

मैं अपनी समस्याओं में उलझी थी और दूसरे इनकी समस्याओं की पूरी तरह जानकारी भी न थी । मेरे सामने तो सिर्फ छोटी छोटी समस्याएं थी - दूध वाले का उधार बढ़ता ही जा रहा था, बच्ची छोटी थी अगर दूध वाले ने दूध देना बन्द कर दिया तो क्या होगा ? सर्दी दिन ब दिन बढ़ रही थी और मेरी बेटी के पास पहनने के लिए स्वेटर न था, ऊन की ज़रूरत थी । ऊन होती तो बुन लेती । मेरे पास चप्पल भी नहीं है टूटी चप्पल कितनी बार जुड़वाऊं फिर बाहर कौन सी साड़ी पहन कर जाऊं । इस तरह हम दोनों अपनी अपनी मुसीबतों में उलझे थे, एक दूसरे का दुख समझने दुख बटाने की न समझ थी

न शक्ति । एकदम टूटे हुए । कौन किसे सहारा दे । और क्यों दे ?

हमारे मकान के आधे हिस्से में एक नवविवाहित जोड़ा रहता था । छोटी सी गृहस्थी, एक कमरे का घर उसी में वे दोनों दूध पानी की तरह मिले रहते। कभी पिकनिक पर जाते तो कभी कुतुब,कभी विड़ला मन्दिर तो कभी सिनेमा, जो जुटता मिल जुल कर खा पीकर सो जाते । उनकी मान मनुहार तो देखते बनती ।

मेरे मन में बड़ा संताप होता । क्या मुझे यह सब नसीब नहीं हो सकता था ? मेरे पिता का घर ख़ासा सम्पन्न घर था पर मुझे पैसा न होना व्यथित न करता । दुख यह था कि पति की जीवनधारा में मेरा कहीं भी स्थान नहीं है । उनसे न तो प्यार का ही सहारा मिलता और न घर गृहस्थी की समस्याओं में ही कुछ सहयोग पाती ।

फिर मन को समझाती कि ये नवविवाहित जोड़ा तो सिवाय अपने दोनों के बारे में सोचने के अलावा कुछ सोच ही नहीं सकता । जब कि मेरे पति को देश की चिन्ता है,समाज की फ़िक्र है,वह देश के प्रति अपना दायित्व समझते हैं । उन्हें तो दुनियां में बड़े बड़े काम करने हैं और मुझे भी उनका साथ देना है । हमारा तो जन्म ही दूसरों के लिए संघर्ष करने के लिए हुआ है ।

लाख समझाऊं पर मन में कसक बनी ही रहती । मन के भीतर उदासी छायी रहती अपने को उपेक्षित पाती उनके कर्तव्यों के सामने । भीतर ही भीतर अहं को चोट पहुंचती । यह चोट खाया अहं न तो पूर्ण समर्पण ही करता और न सम्पूर्ण प्यार ही पाता । मैं अधूरी की अधूरी ही रहती । ऐसी रिक्तता कि आदमी घबरा उठे ।

तरह तरह के सोच विचारों में दिमाग़ को उलझा कर मन की रिक्तता दूर करने की कोशिश करती ।

"सच बात तो यह है ये मुझे प्यार ही नहीं करते । इन्हें मेरी ज़रूरत ही नहीं है । मैं ही पड़ी हूं इनके यहां रोटियां तोड़ने । शायद ज़्यादा पढ़ी लिखी न होने के कारण ये मुझे अपने योग्य नहीं पाते हैं इसीलिए मन से भी दूर बनाए रखते हैं । मैं इनकी नज़रों में छोटी हूं ।"

बस एक बार फिर ऊंचा उठने, कुछ विशेष बन कर दिखाने की ललक मन में उठी । तीन साल की बच्ची और एक साल का बेटा दोनों को लेकर परीक्षा की तैयारी में जुट गई । घर गृहस्थी के काम, बच्चों की देखभाल । कुछ बन कर दिखाने की चाह में सब दुख भूल गई ।

लेकिन सब कुछ सीधा और आसान नहीं । ज़िन्दगी एक सपाट सड़क की तरह तो नहीं । यहां तो एक के बाद एक हादसे होते हैं तब कहीं एक क़दम आगे बढ़ पाता है ।

मैं तो एक क़दम भी आगे न बढ़ पाई थी कि एक हादसा हुआ । लगा ज़मीन थम गई है और मैं सूर्य के चारों तरफ चक्कर लगा रही हूं । चक्कर खाते खाते देखती क्या हूं कि राम और सीता के बीच में एक तीसरे का अस्तित्व पनपने लगा है । उस शख़्सियत को न मैं स्वीकार पाती न नकार पाती । ऐसे भयंकर मानसिक द्वन्द्व की शुरुआत हुई जिसके बारे में पहले कभी कुछ सुना भी न था ।

घोर अपमान की ज्वाला मुझे हर समय झुलसाती रहती । मेरा आहत अहं मुझे दिन दिन असहिष्णु, कटु और उग्र बनाता गया । मेरी उग्रता बढ़ती गई और पति की उपेक्षा । उपेक्षित मन बावला हो उठा था । हम दोनों एक दूसरे के स्वाभिमान को आहत करने, अहं को चोट पहुंचाने का ऐसा विषम खेल खेलने लगे कि दोनों के पांव उखड़ गए । पति ने घर में उपेक्षा का कवच ओढ़ कर अपनी जगह बाहर खोज ली । मैं घर के भीतर निपट अकेली, असहाय और असुरक्षित होती गई ।

दिन में पति जितनी देर घर में रहते, मैं व्यंग बाणों से छेदती रहती। हर बात के साथ विष वमन करती । रात होते होते थक जाती । हताश मनः स्थितियों में इनके पैरों को आंसुओं से धोती और पूछती "मुझे यही पुरस्कार मिलना चाहिये था जो तुमने दिया है ?"

इनके पास चुप्पी का सहारा था ।

"बोलते क्यों नहीं ? मैंने हमेशा पत्नी का कर्तव्य निभाया, तुम्हारे दुख को दुख समझा सुख को सुख जाना, तुम्हें जी जान से प्यार किया, उस सबका यह बदला । मेरे प्यार का इनाम क्या यही मानसिक संताप है ?"

"मैं बाज़ आया तुम्हारे प्यार से । मेरी जान छोड़ो ।" पति नपे तुले शब्दों में तिरस्कार करते तो मैं तिलमिला उठती । खुशामद छोड़ कर अधिकार की लड़ाई लड़ने को उतारू हो जाती ।

"मैं तुम्हारी पत्नी हूं, मैं तुम्हारे जीवन में किसी दूसरी औरत को बर्दाश्त नहीं कर सकती । मैं भी सुन्दर हूं, जवान हूं । तुम अच्छी तरह जानते हो कि तुम्हारे ही मित्रों में से कितनों ने मुझसे प्रेम निवेदन किया, मुझे सहारा देना चाहा, मुझे अपनाना चाहा, पर मैं तो तुम्हारी तरह नहीं निकली । तुम्हारी हर तरह की ज़्यादतियां सह कर भी तुम्हें प्यार किया ।"

"बड़ी मेहरबानी की । अब यह अहसान किसी और पर लादो, मुझे बख़्शो" पति दो टूक बात कहते ।

इनकी रुखाई से मैं डर जाती और नर्म पड़कर कहती "कैसी बातें करते हो ? मैं एहसान जता रही हूं ?" मैंने पति के पत्थर जैसे चेहरे को हाथों में भरने का प्रयत्न करते हुए उन्हें अपनी आंखों में झांकने को मजबूर किया । अपने मन के दर्द का पिघलाव आंखों में ला कर पूछा "क्या मुझे किसी के प्यार की ज़रूरत नहीं ? मुझे जीने के लिए प्यार का सहारा नहीं चाहिए ?"

"नहीं तुम्हें कुछ नहीं चाहिए, न प्यार न सहारा ।"

कहीं आग लग गई । मेरा हाथ पति की बनियान पर चला गया । गले के पास से बनियान कस कर पकड़ ली और मुंह से पागलों की तरह चिल्लाती रही, है, है, है । तब तक चिल्लाती रही जब तक बनियान फाड़ कर चिंदी चिंदी न कर दी । मुंह से झाग निकल आया । गुस्से में बेसुध होकर पलंग के नीचे गिर पड़ी ।

इन्होंने टांगे पकड़ कर मरे हुए कुत्ते की तरह घसीटते हुए कहा, "अगर इसी तरह पड़ी रहना चाहती हो तो पड़ी रहो ।"

मैं गिर कर शांत हो गई और ज़मीन पर पड़े पड़े आंसू बहाती रही, न जाने कब सो गई ।

सुबह बेहद थकी और कमज़ोर महसूस कर रही थी, दिमाग़ में सांय सांय के अलावा कुछ न था । खाना बनाया, सबको खिलाया, इन्हें आफ़िस के लिए बिदा किया । और पति के कमरे की सफ़ाई करने के विचार से इनके कमरे में आई । खूंटी पर कुर्ता पजामा टंगा था जिसे यह अभी उतार कर गए थे ।

न जाने कैसी हूक उठी । खूंटी पर टंगे कपड़ों से लिपट कर कलेजा फाड़ फाड़ कर रोने लगी । मानों इनका शरीर तो किसी दूसरे लोक को चला गया था और मेरा दुख सुख सुनने को ये कपड़े ही रह गए हों ।

थोड़ी देर बाद चुप हुई तो, अपने को यह विश्वास दिलाने लगी कि मैं विधवा हो गई हूं । शीशे के सामने जा कर रगड़ रगड़ कर सिन्दूर पोंछा और अपने को याद दिलाया कि तेरा पति मर चुका है, यह आदमी जिसके साथ तू रह रही है और जो तेरे बच्चों को खाना पीना दे रहा है वह तेरे मृत पति का पिता है । जिसे न बहू से कुछ लगाव है न बच्चों से । सिर्फ समाज के डर और कर्त्तव्य भावना से मेरी और बच्चों की परवरिश क़िए जा रहा है ।

मुझे हैरानी तो इस बात की थी कि ये मुझसे तो बोलते ही नहीं थे, बच्चों की तरफ भी न देखते । दोनों सहमे सहमे से बच्चे इनकी छाया से भी दूर रहने की कोशिश करते । पति ने उस दिन से ऐसी चुप्पी साध ली जो तीर की तरह चुभती । न मुझसे कोई बात न बच्चों से । बस पहली तारीख को पैसे हाथ में रख देते और बस ।

अनजान सहमे बच्चे कुछ समझते कुछ न भी समझते । रात को दोनों को अपने कलेजे से लगाकर सोती और कभी भी आत्महत्या न करने का संकल्प दुहराती । दोनों आंचल में दुबक जाते । जैसे मेरी बात समझ गए हों ।

अक्सर रात आंखों में ही कट जाती । झपकी लगती भी तो ज़रा सी आहट से चौकन्नी हो जाती कि पति मुझे मनाने आ रहे हैं ।

सोचती कि वे मुझसे कहेंगे "तुम क्यों अपने को जला रही हो अनु । मैं किसी औरत को प्यार नहीं करता, सिर्फ़ तुम्हें चाहता हूं, सिर्फ़ तुम्हें ।" पर कुछ भी तो नहीं । शुरू से आख़िर तक भ्रम ही भ्रम ।

भ्रम जल्दी टूटते नहीं । आदमी भ्रम का पल्ला पकड़ कर ही जीवन नदिया पार उतरना चाहता है ।

फिर झपकी लगी । लगा ये उठे हैं और बाथरूम जा रहे हैं, अबकी बार तो ज़रूर ही मेरे कमरे में आयेंगे और कहेंगे, "तुम बहुत पगली हो अनु, अब तो यह बचपना छोड़ो, दो बच्चों की मां हो गई हो ।" पति सीधे अपने कमरे में चले गये और उन्होंने दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया कि मैं ज़बरदस्ती अन्दर न घुस आऊं ।

घर में श्मशान जैसा सन्नाटा छाया था । मैं मन ही मन उबल रही थी, चाहती थी कोई बहाना मिले तो फट पड़ूं, खूब लड़ूं खरी खोटी सुनाऊं, सिर फोड़ लूं । इस अन्दर की आग को कैसे बुझाऊं ? अगर बुझा नहीं पाती तो दूसरों के दिलों में लगा दूं ।

'यह तो भगवान ही जानने वाले हैं कि इस व्यक्ति ने मेरे प्यार का हमेशा अपमान किया, मेरी भावनाओं का उपहास किया, मेरे नारीत्व को रौंदा, मेरे सतीत्व का उपहास किया । सारी दुनिया मिलकर भी मुझे दुख देती तो वह दुख अवश्य ही इस आदमी के दिए दुख से कम होता ।' घर का कामकाज करती रहती और ऐसे वाक्यों में अपनी व्यथा व्यक्त करती रहती ।

इन्हीं दिनों पति किसी काम से शिमला जाने वाले थे । दिन भर उनके जाने की तैयारी करती रही और मन ही मन इस नतीजे पर पहुंची कि ये शिमला

अकेले नहीं जा रहे । इनके साथ कोई दूसरा भी है जिसने मेरा संसार उजाड़ा है ।

फिर रात हुई, मैं अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी, पति से बोली "मैं भी चलूंगी शिमला ।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? मैं जाना चाहती हूं ।"

"तुम नहीं जा सकतीं । मैं आफ़िस के काम से जा रहा हूं या सैर सपाटा करने ? बच्चों का भी कुछ ख़्याल है या सिर्फ अपना ही ।"

"बच्चे मैं आशा के पास छोड़ दूंगी ।"

"बेकार की बातें मत करो ।"

सारा संयम टूट गया । "मैं जाने की बात करूं तो बेकार की बात है और कोई दूसरा जाय तो ठीक है । अगर ऐसा ही है तो ढोंग क्यों करते हो । जिसके साथ घूमते फिरते हो, जिसे प्यार करते हो, उसी के साथ जा कर रहो न । मुझे तुम्हारा एक धेला भी नहीं चाहिए । मुझमें इतनी हिम्मत है कि अपने बच्चों को पाल पोस लूंगी, पढ़ा लिखा कर दिखा दूंगी, कमीने . . . . ।"

तड़ाक से एक चांटा लगा । ये अपनी औक़ात पर आ गए "साली उल्लू की पट्ठी, जीना हराम कर रक्खा है ।" एक चांटा मार कर ये थम गए। चुप्पी और उपेक्षा ही इनके कारगर हथियार थे ।

मैं रो रो कर मन का गुबार निकालती रही तरह तरह की बातें कहकर इन्हें गुस्सा दिला कर और मारने पर मजबूर किया । पीटते पीटते जब थक गए तो बोले "जा तो अकेला ही रहा था पर अब न जाऊंगा । देखता हूं क्या कर लेती हो तुम इस तरह के तमाशों से ।"

"मुझे तो पता ही था कि तुम उस बद चलन औरत के साथ ज़रूर जाओगे । तुम्हारी निगाह में ऐसी औरतें ही पूज्य हैं । मेरे समर्पण का सतीत्व का तुम्हारी निगाह में कोई मूल्य नहीं ।"

"वह बदचलन औरत कहीं अच्छी है जो दूसरों के कलेजे में ठंडक पहुंचाए । सतीत्व की आग में जलना मुझे मंजूर नहीं । सब मालूम है कैसी सती सावित्री हो । जो कुछ हो इसलिए हो कि और कुछ कर ही नहीं सकतीं। किसी ढोंग दिखावे की ज़रूरत नहीं । मेरी तरफ़ से तुम्हें पूरी छूट है जो जी में आए करो । तुम भी बदचलन बन जाओ ।"

अपना वाक्य खत्म करते करते उठे और अलमारी से रम की बोतल

निकाल कर दो चार पैग पिए और बिस्तर पर जाकर लेट गए ।

मैं तो चाहती थी इन्हें भी नींद न आए, ये भी मेरी तरह आकुल व्याकुल हों । पर ये तो आराम से गहरी नींद सो गए ।

हार पर हार । सीता सावित्री ने तो शारीरिक दुख झेले थे भौतिक सुखों को त्यागा था पर मेरी तरह उपेक्षा और अपमान की आग में तो न जली थीं । यह संत्रास, कुंठा और तिरस्कार तो न सहा था ।

पहली बार इन्होंने हाथ उठाया था, शरीर पर जो कुछ चोट लगी थी वह तो थी ही पर मन पर ऐसी चोट लगी थी कि आंसूं थमते ही न थे । रात कैसे कटी याद नहीं, सुबह उठी तो बैठी बैठी आंसू बहा रही थी ।

बच्चे मम्मी मम्मी पुकार रहे थे और मैं बस रोए जा रही थी ।

ये तो घृणा और तिरस्कार भरी एक नज़र मेरी ओर फैंक घर से बाहर चले गए । बच्चों को तो देखना ही था । काम में लग गई पर आंसू थे कि थमते ही न थे । निरंतर बहे जा रहे थे ।

आशा आई, कुछ सोचा और मुझे डाक्टर के यहां ले गई । यहां पर भी आंखें बरसे ही जा रही थी । डाक्टर मुझे उठा कर अलग कमरे में ले गए, कुर्सी पर बिठाया, सिर पर हाथ फेरा, हथेली से आंसू पोंछे । फिर पुचकार कर बोले "बेटे मुझे यह बताओ तुम्हें किस बात का सदमा लगा है ?"

इतना ममत्व, फूट फूट कर रोई । कह तो कुछ नहीं पाई पर ज़ार ज़ार रो कर हल्की हो गई । दवा ली और चली आई ।

दूसरे दिन शिवरात्रि थी, इन्हें शिमले जाना था । पति को घर से विदा करते समय कलह करना सुगृहणी का काम नहीं । इन्हें चुप चाप बिदा किया और अपना जासूस भेज कर पता किया कि यह अकेले गए हैं या कोई महिला भी उनके साथ है ।

मेरी शंका ठीक थी । ये अकेले नहीं गए थे । जिस समय जासूस ने यह सब आकर बताया मैं मंदिर जाने के लिए पूजा की थाली लिए खड़ी थी । शाम को चार बज गए थे । मंदिर लगभग ख़ाली पड़ा था और अगर भरा भी होता तो मुझे कुछ दिखाई थोड़े ही दे रहा था । एक आंधी सी दिमाग़ में चल रही थी । पूजन किया । थाली रक्खी और शंकर के चरणों में गिरकर वरदान मांगती रही, "प्रभो मुझे इस आदमी से छुटकारा दिला दो । मैं इसे हमेशा के लिए भूल जाऊं ।"

मैं भगवान से चैन मांगती थी पर चैन मुझसे कोसों दूर था । न जाने

कैसी ज्वाला में जलती रहती । खून से सींचे जीवन मूल्यों के पौधे खर पतवार बन गए थे । न पैरों तले ज़मीन मिलती न सर पर आसमान का साया लगता। कहां टिकूं ? द्वन्द्व, संताप, क्रोध और इन्हीं सब से उपजा बदला ।

हां बदला ही मुझे शान्ति दे सकता है । जिसके लिए निष्ठा और समर्पण का कोई मूल्य नहीं है उससे लगाव कैसा । पति ठीक ही कहते हैं कि मेरे पास सतीत्व की आग है, हां यह आग ही तो है जिसमें मैं और मेरे पति जल रहे हैं । क्यों न मैं ही भस्म हो जाऊं अपनी आग में ।

लोक कथाओं में सुना था कि कोई स्त्री जब पति के विधवा होने पर सती होती है तो वह अपने मृत पति का सिर गोद में लेकर बैठ जाती है उसकी कनिष्ठका उंगली से आग निकलती है और चिता प्रज्वलित हो जाती है ।

मैं पद्मासन पर बैठ गई, कल्पना में पति का मृत शरीर गोद में रक्खा और अपनी उंगली से आग निकलने की प्रतीक्षा में लीन हो गई ।

मेरा बेटा रोता रहा, पर मैं तो कुछ सुन ही नहीं रही थी । बड़ी देर बैठने के बाद न मेरा सतीत्व जागा न उंगली से आग निकली । बेटे से दो वर्ष बड़ी बेटी भौंचक्की सी देख रही थी, वह भाई को चुप कराने की कोशिश भी कर रही थी कि इसी कोशिश में दोनों ही ज़मीन पर गिर पड़े ।

बच्चों के गिरने से दिमाग़ ठिकाने आया । दोनों बच्चों को छाती से लगा कर रोने लगी । बड़ी ग्लानि हुई । सोचा अगर अभी पागल नहीं भी हुई हूं तो इन हरकतों से आगे चलकर ज़रूर हो जाऊंगी । फिर ये बच्चे कहां भटकेंगे । कैसी दुर्गति होगी दोनों की । प्रतिज्ञा की कि पति का प्यार मिले या न मिले साथ छूटे या रहे, अपने बच्चों की ख़ातिर होश हवास कभी नहीं खोऊंगी ।

दूसरे दिन आशा आई, दिन भर उससे बातें करती रही, मन के भेद खोले, अपनी व्यथा बताई और रास्ता पूछा "क्या करूं आशा,तुम्हीं बताओ ।"

आशा मुझसे उम्र में बड़ी, ज्यादा पढ़ी लिखी और अनुभवी है उसने दिलासा देने वाली बहुत सी बातें कहीं । दुनिया में सब कुछ होता है । ज़िन्दगी सीधी सपाट सड़क नहीं, यहां तो मोड़ पर मोड़ आते हैं रास्ते में नदी पहाड़ आते हैं सबको पार करना होता है । संसार में कुछ भी शाश्वत नहीं होता । आज वे भटक रहे हैं कल फिर तुम्हारे पास होंगे और भी ज़्यादा निकट होंगे । इन्सान है कभी किधर जाता है कभी किधर, आदमी पत्थर की लकीर तो नहीं कि जैसी खिंच गई खिंच गई ।

"सच पूछो तो तुम्हारी समस्या इतनी बड़ी नहीं जितनी तुमने बना ली

हैं । हम खुद ही बड़ी बड़ी भाव प्रवण मूर्तियां बनाते हैं और खुद ही तोड़ देते हैं । घर गृहस्थी में ऐसी बातों को तूल नहीं दिया जाता । सहज होकर रहना सीखो । धीरे धीरे सब कुछ पहले जैसा हो जायेगा ।"

आशा ने मेरी आंखों में चमक देखी । उत्साहित होकर बोली "वे कैसी औरतें होती हैं जो दूसरे पुरुषों को अपने बन्धन में बांध लेती हैं । कुछ तो होगा उनके पास, और एक हम हैं कि अपनी ही चीज़ सम्हाल कर नहीं रख सकते। संतुलन खोने से कुछ नहीं होगा उल्टे बात बिगड़ जायेगी ।"

आशा चली गई । मुझे बड़ा बल दे गई । सोचा अब अपना नज़रिया बदलूंगी । तन मन हल्का लगा । घर के कामों में लग गई और सारे घर में गाती फिरी :-

मन रे तू काहे न धीर धरे,

जनम मरण का मेल है सपना . . . .

बच्चे कुछ हैरान और ज्यादा खुश, बार बार मुझसे लिपट जांय । मैं गाती रही ।

मेरा बदलाव आश्चर्य से इन्होंने भी देखा पर ऊपरी तौर पर उपेक्षा का कवच ओढ़े रहे । ऐसा दिखाते कि इन्होंने कुछ नोटिस ही नहीं किया है ।

अभी कुछ दिन भी न बीते थे कि एक हादसा फिर हुआ । कपड़े धोते समय इनकी जेब से मुझे एक छोटा सा पुर्जा मिला । छोटा सा पत्र लिखा था, "पूज्य आदरणीय, जीवन नैया मंझधार में है आपके सहारे की सख्त ज़रूरत है। मुझे रास्ता दिखाइये । आपकी . . . .।"

पत्र में कुछ खास नहीं लिखा था । पर जो भी लिखा था मेरे संकल्पों को चूर चूर करने के लिए काफ़ी था । बेशर्म औरत मेरे पति से सहारा मांग कर मुझे बेसहारा करना चाहती है । इस धूर्त को देखो, बड़ा सहारा देने वाला। अपनी पत्नी को तिल तिल जला कर, बच्चों की और पत्नी की उपेक्षा कर, दूसरी औरत को सहारा देने वाला मसीहा बना है । इसके दिल में मेरे लिए रत्ती भर भी जगह नहीं है । मैं इस आदमी से बदला ज़रूर लूंगी ।

क्या मेरी ज़िन्दगी में कभी कोई आदमी नहीं आया ? कितनों ने स्नेह मांगा, मित्रता मांगी, मेरे मन को जीतने का प्रयास किया, पर मैं तो आंखों पर पट्टी बांधे, संसार को न देखने का अभिनय करती रही । अनु को भी चाहने वाले हैं । क़लम उठाया और छोटा सा पत्र लिखा । कुछ कुछ वैसा ही जैसा अभी अभी पढ़ा था :-

प्रिय रमेश,

एक दिन तुमने अपना मित्रता और स्नेह भरा हाथ मेरी ओर बढ़ाया था । उस समय में अहंकार के मद में चूर थी, तुम्हारी भावनाओं को कैसे समझ पाती ? पर आज में सब तरफ़ से टूट चुकी हूं । निपट असहाय और अकेली हूं, मुझे ऐसे मित्र की ज़रूरत है जिसके कंधे पर सिर रख कर रो सकूं । मैं मरना नहीं चाहती रमेश, मुझे जीने के लिए सहारा चाहिए ।

तुम्हारी अनु

पत्र को बंद करके रमेश का पता लिखा और रख दिया । जब यह शाम को घूमने जाने लगे तो इन्हें जलाने के लिए इनसे ही अकड़ कर कहा 'मेरा यह पत्र पोस्ट कर देना ।'

यह पत्र लेकर चले गए । मैंने सोचा कि यह रमेश का पता देख कर आग बबूला हो जायेंगे । कहेंगे तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई रमेश को ख़त लिखने की । या पत्र को ख़ोलकर पढ़ेंगे । जब पढ़ेंगे तो सारी उपेक्षा धरी की धरी रह जायेगी। होश ठिकाने आ जायेंगे 'बच्चू' के । पता चलेगा कि कैसा जी जलता है जब प्यार में कोई धोखा देता है । मैं तो इनका जी दुखाना ही चाहती हूं । जलें कुढ़ें, यही तो तमन्ना है मेरी ।

ग्यारह बजे रात को लौटे तो मैंने कड़क कर पूछा, "मेरा लैटर पोस्ट कर दिया था ?"

"हां ।" एक सपाट उत्तर था ।

यह तो कुछ और ही हो गया ! मैं तो इन्हें धमका रही थी । न जाने किस बदले की भावना से ख़त लिखा था, वाक़ई मुझे रमेश से कुछ लेना देना नहीं है । आंखों की नींद उड़ गई । उठी बैठी । एक अजब बेचैनी थी । कैसी ग़लती कर बैठी ? क्या करूं क्या न करूं इसी उधेड़ बुन में चार बज गए ।

ये उठ कर बाथरूम गए तो साहस बटोर कर बोली "सुनो !"

"क्या है" एक जान लेवा रुखाई के साथ ये बोले ।

रुखाई की परवाह न करते हुए मैं बोली "एक ग़लती हो गई ।"

"सिवाय ग़लती के और होता ही क्या है ?" कह कर ये पीछा छुड़ाने लगे । मैं सारे हथियार डाल चुकी थी । दबी घुटी ज़बान में दोनों पत्रों की बात बताई । देर तक चुप्पी छाई रही । फिर बोले "उसके आफ़िस में जा कर पत्र मांग लेना । बदमाश आदमी है । बेजा फ़ायदा उठाएगा ।" बात खत्म, एक सिगरेट जलाया, पिया और सो गए ।

मैं बैठी की बैठी रह गई । मैंने सोचा था कि मेरे आत्म समर्पण पर यह मुझे दिलासा देंगे, सर पर हाथ फेरेंगे या फिर चपत लगा कर कहेंगे, बड़ी पगली हो तुम, कैसा बचपना कर बैठती हो । पर यहां तो सिर्फ रुखाई ही रुखाई है ।

लंच टाइम में रमेश के आफ़िस गई । बड़ा सहज होकर मिला । जैसे मैं यूं ही मिलने चली आई हूं । कोका कोला मंगवाया, फिर सिगरेट फूंकते हुए बोला "कैसी शकल बना ली है तुमने अपनी । न तन की सुधि न मन की । साज श्रृंगार से वैराग्य । यह कैसा वैध्यव्य छाया है तुम पर । क्या तुम वही चार साल पहले की अनु हो ? जीवंत ज़िन्दगी बिखेरती अनुराधा कहां चली गई?"

मैं कांप रही थी । गला भरा था । आंसूं बाहर निकलने को मचल रहे थे । किसी तरह मुंह से निकला, "मेरा . . . . . . मेरा ।"

"हां, हां तुम्हारा ख़त मुझे सुबह ही मिल गया था । तुम तो जानती ही हो कि तुम्हारे लिए कुछ कर सकूं यह मेरा सौभाग्य होगा ।"

"मैं . . . .मैं अपना ख़त वापस लेने आई हूं ।"

"वापस !" वह चौंका । फिर संभल कर बोला, "यह आफ़िस है अनुराधा । मैं तुम्हारा ख़त लेकर थोड़े ही आया हूं। शाम को छः बजे के बाद घर आ जाना और ख़त ले जाना ।"

"घर ! घर तो बहुत दूर है । इलाक़ा भी सुनसान है, रात हो जायेगी।"

"क्या हुआ ? तुम तो हिम्मत वाली लड़की हो, चली आना । फिर ख़त भी तो लेना है । लौटते में रिक्शा मिल जायेगा ।"

ज़्यादा कहने सुनने की गुंजायश न थी । चुपचाप घर चली आई । पति के दफ़्तर से लौटने के पहले ही नहा कर रमेश के घर के लिए चल दी। शाम का झुटपुटा था। रमेश का घर सांय सांय कर रहा था उसकी मां घर पर न थी । मैं ड्राइंग रूम में घुसी अगरबत्ती की सुगंध का झोंका आया। रमेश ने उठ कर स्वागत किया "आओ अनु, आज तुम्हारा जन्म दिन है न ?" मैं सोचने लगी सच ही तो, मुझे तो होश भी नहीं था कि आज कौन सी तारीख़ है।

"तुम दोनों लड़ते झगड़ते रहते हो कुछ याद भी रहे तो कैसे, लो अपने जन्म दिन की मिठाई खाओ ।" वह वातावरण को काफ़ी सहज बना रहा था। मैंने सब कुछ नज़र अन्दाज़ करके कहा "मैं लैटर लेने आई हूं ।"

"वह तो है ही तुम्हारा लैटर जब चाहो ले लो ।" कहते हुए वह उठा

और खिड़कियों के पर्दे ठीक करने लगा । मेरे मन को कुछ भासता इससे पहले ही वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा, "कैसी विचित्र बात है अनुराधा, जो तुम्हें ठोकर मारता है, तुम उसके पैरों पर गिरती हो और जो तुम्हारे पैरों पर गिरता है उसे तुम ठोकर मारती हो ।"

"मुझे ग़लत मत समझो रमेश, मैं थोड़ी देर के लिए रास्ता भूली थी, भटकी नहीं हूं । मुझे लैटर दे दो मैं घर जाऊंगी ।"

मेरा बदन कांप रहा था । पसीने पसीने हो रही थी, वह कह रहा था "तुम्हारे मूल्य थोथे हैं । ज़िन्दगी को ज़िन्दगी की तरह जिओ । तुम सुरेश के लिए चाहे शहीद हो जाओ, वह तुम्हें समझने की ज़हमत कभी न करेगा ।"

"बेकार की बातें मत करो, मुझे लैटर दो मैं घर जाऊंगी ।"

मुझे चक्कर आ रहा था, उसने मुझे थाम लिया, मैं गिर रही थी ।

उसके बाद वह हो गया जो मैंने कभी सोचा भी न था । मुझे होश ही न रहा क्या ग़लत है क्या सही । स्वर्ग या नरक जो कुछ भी था मैंने ही भोगा था । न जाने किस दैवी या आसुरी प्रेरणा से मैं गर्त में धंसी जा रही थी ।

मुझे होश आया तो रमेश वहां न था । थोड़ी देर में वह दूसरे कमरे से सहज हो कर आया । उसके हाथ में मेरा पत्र था । मेरे सामने ही उसने पत्र के टुकड़े टुकड़े कर दिए "अब तो खुश हो ?" वह मुझे प्यार से थपथपा रहा था । "उठो मुंह धो लो और घर जाओ ।"

मैं उठ कर चल दी । कैसा मुंह, कहां का धोना । यह कालिख भी कहीं धुलती है ? घर आते आते नौ बज रहे थे । बच्चे उदास दुखी बैठे बैठे राह देख रहे थे ।इनके चेहरे पर भी तनाव था जो मुझे देख कर कम हो गया । अब अख़बार बढ़ने का अभिनय कर रहे थे ।

कोई कुछ नहीं बोला । मैंने ही पूछा "खाना खा लिया ?"

"हां ।"

"बच्चों ने भी ।"

"हां ।"

कोई बात ही न पूछी, न पत्र के बारे में और न इतनी देर से आने की वजह । मैं चाहती थी कि पत्र के बारे में ज़रा भी बात करे तो मैं इन्हें सारी बता कर, रो रो कर, पैरों पर गिर कर माफी मांग लूं और हम दोनों में सुलह हो जाए । या फिर ये मुझे खूब मारें, भला बुरा कहें । पर इनके लिए तो जैसे कोई बात ही न हुई हो ।

ज्यों ज्यों रात गहराती गई मेरा अपराध बोध भी गहराता गया । कहीं डूब मरूं ? आग लगा कर मर जाऊं ? क्या कर बैठी ? पत्ता भी खड़कता तो लगता पति मेरे पास आ रहे हैं अब सब बता कर मैं हल्की हो जाऊंगी । अपना अपराध स्वीकार कर लूंगी ।

चार दिन चार रातें भयानक पश्चाताप में जलती रहीं, रात रात भर टहलती रहती । मुंह से शब्द ही न फूटते । मैं आपे में न थी । दिमाग़ में बराबर मशीनी गति से कुछ चल रहा था जो थमता ही न था बस एक के बाद एक घटना या विचार जुड़ते जाते । अर्थहीन कहानी बनती रहती और मैं असहाय होती जा रही थी । चार रातों के जागरण के बाद भोर में ही नहा धो कर मंदिर चली गई । मूर्ति के दर्शन करते ही फूट फूट कर रोने लगी । भगवान तो मेरी बात सुनेंगे ही । उनके सामने सब कुछ स्वीकार किया और साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में लेट गई । कुछ राहत मिली और तंद्रा ने घेर लिया न जाने कितनी देर लेटी रही शायद खो गई थी या सो गई थी । किन्हीं बलिष्ठ कठोर हाथों ने मुझे उठाया "उठो देवी भगवान कल्याण करेंगे ।"

"क्या सच ही भगवान सब कुछ ठीक कर देंगे ?" मैं बच्चों की तरह बिलख उठी ।

"हां देवी ऐसा ही होगा ।" पुजारी बोले ।

घर आई एक नशे में घर का काम किया, पति को आफ़िस और बच्चों को स्कूल भेजा । आपस के झगड़ों में साल पर साल बीतते गए । कैसे बच्चे स्कूल जाने लायक हो गए पता ही न चला ।

घर में अकेली चक्कर लगाती रही, चक्कर लगाते लगाते ड्राइंग रूम में आई एक कोने में हम दोनों के विवाह के बाद खिंचवाई फ़ोटो रक्खी थी । उसे उठा कर आंखें फाड़ फाड़ कर देखती रही । बाहर से झाड़ू उठा लाई और फ़ोटो पर लगातार मारती रही । पहले शीशा फूटा, फिर फ़ोटो फटनी शुरु हुई । मैंने झाड़ू से मार मार कर फ़ोटो की चिन्दी चिन्दी उड़ा दी ।

ऐसा करने से बड़ी शान्ति मिली, बदला लेने जैसा सुख उपजा इस कमरे से उस कमरे में अनोखे उत्साह से नाचती मटकती फिरी । थोड़ी देर बाद सब कुछ ठंडा पड़ गया और फिर वही डिप्रेशन का दौरा ।

कभी बावरी बन फूली फिरती तो कभी डिप्रेशन में पड़ी रहती सब कुछ चल रहा था, घर का काम काज । पर मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ रहा था।

ऐसी ही मनःस्थिति में मैंने न जाने किस प्रेरणा वश आटा गूंधा, पुरुष

का एक पुतला बनाया और उसे अंगीठी में डाल दिया । पुतला जलने लगा, मन में खुशी भर गई । जैसे कुछ प्राप्ति हो गई हो ।

सब सो रहे थे । मैं चुपके से घर से निकली, रिक्शा किया और रात की सूनी सड़कों पर रिक्शे वाले को घुमाती रही । मैं क्यों घूम रही थी । क्या सोच रही थी कुछ याद नहीं । अच्छी खासी सर्दी होगी पर मैं तो बिना कोई गरम कपड़ा पहने रिक्शे में बैठी घूम रही थी । दो घंटे बाद लौटी, रिक्शे वाले को पैसे दिए और अन्दर आ गई ।

एक बज रहा था । सब सोए हुए थे । मेरे मन को अच्छा लग रहा था । लगा एक रास्ता मिल गया । घूमने से सुकून मिलेगा । घर में कोई कुछ पूछने वाला तो था नहीं, जब तब रातों को इसी तरह भटकती रहती ।

क्या मैं पागल हो रही हूं ? प्रश्न ने फन उठाया । नहीं नहीं, मैं कोई प्रश्न नहीं सुनूंगी । सही ग़लत कुछ नहीं । मन चाही ज़िन्दगी जिऊंगी । जैसी यह बड़ा भारी बुद्धि जीवी जीता है । कोई बन्धन नहीं . . . फ्री सेक्स . . . .। सोच कर खूब ज़ोर से ठठा कर हंसी । यह घूर घूर कर देखने लगे । कड़े स्वर में बोले "पागल हो गई हो क्या ?"

मैंने सिर मटका कर कहा, "हूँऽऽऽऽ"

पति के चेहरे पर कुछ परेशानी झलकी । बड़ा सुख मिला । अच्छा ! तो भगवान का सिंहासन भी ड़ोला । अगर पागल बनने से पत्थर के देवता हिलते हैं तो यही सही । मैं शक्ति का अवतार हूं . . . . . फिर वही हंसी ।

शाम होते होते हंसी ग़ायब, उदासी का विकट आलम । न जाने किन अतल गहराइयों में डूबने उतराने में लगी हुई थी । किसी नरक में पड़े पड़े रात बिता दी । आंख एक बार झपकी तक नहीं । चार बज रहे थे । झट नहाया, धोया, पूजा की थाली सजाई और चल पड़ी मंदिर की ओर । जाड़ों के दिन थे। काफी अंधेरा था । कुत्ते भौंक रहे थे । मैं चली जा रही थी भगवान से लौ लगाने ।

मुझे थोड़ा बहुत चैन ही तभी मिलता जब भगवान के सामने उनके चरणों में सिर झुका कर बेसुध पड़ जाती । प्रभु के चरणों में ही तंद्रा के क्षण आते । नहीं तो नींद तो मुझसे कोसों दूर थी । न जाने कितने दिनों से सोई नहीं थी, न मुझे यांद है न कोई दूसरा याद रखने वाला है।

मंदिर का द्वार बंद था । खुलवा कर अन्दर गई । पुजारी ने आंखे मलते मलते द्वार खोला और मुझे देख कर ठिठका । पर मैं सीधी भगवान के

चरणों में पूजा की थाली पटक कर उन पर न्योछावर हो गई ।

"देवी शान्त हो । अपने मन का दुख भगवान के आगे कह दो । वे तुम्हारी रक्षा करेंगे" पुजारी कोमल स्वर में समझा रहा था । प्यार से सिर पर हाथ फेर रहा था । आंखों में आंखें डाल कर पुजारी मुझे हाथों में समेटने की चेष्टा कर रहा था । मुझे उठा कर बिठाने की बजाय ठौर कुठौर हाथ लगा रहा था । शरीर पर धीरे धीरे फिरते हाथ सांत्वना भी दे रहे थे और एक कुटिल उद्देश्य की ओर बढ़ भी रहे थे । मुझे न कुछ अच्छा लग रहा था न कुछ बुरा।

अच्छा बुरा सोचने समझने की शक्ति ही न थी । मन में केवल एक ही भाव था कि भगवान के चरणों में समर्पित हो रही हूं । भगवान के सामने मेरा मन, तन . . . . .। सचमुच ही मैंने समर्पण कर दिया ।

निश्चय ही वह समर्पण था । मन बुद्धि सभी का । मैं थी भी और नहीं भी थी । दुनिया मुझसे छूट रही थी और मैं निष्ठुर दुनिया को छोड़ रही थी । लोगों की भाषा में मैं पागल हो गई थी । कुछ होश न था । कभी कभी याद का कोई प्यारा सा टुकड़ा तैर जाता 'मेरा बेटा मुझे चूम रहा है ।' 'मेरी बेटी मेरे गले से लिपटी हुई है ।' फिर सब कुछ छूट जाता । मैं कई सूत्र जोड़ने की कोशिश करती, पर सब बिखर जाता । तारतम्य टूट जाता । लोगों का कहना कि मैं पागल हो गई हूं ठीक ही था ।

इस भयंकर झंझावात में फंसी क्षण भर के लिए होश में आती तो देखती, कि उपेक्षा और तिरस्कार को सारी बीमारियों की दवा मानने वाले मेरे पति, मेरा हाथ पकड़ पकड़ कर डाक्टरों के दरवाजों पर घूमे और मैं उनका हाथ छुड़ा कर भागती रही ।

एक धुंधली सी फ़िल्म, डाक्टर ने पति से कुछ कहा, ये आसमान से गिरे । मैं डाक्टर और पति को आंखें घुमा घुमा कर देख रही थी और एक अवर्चनीय सुख भोग रही थी । डाक्टर का कहना मुझे कहीं से छू न रहा था।

डाक्टर ने कहा था, "यह बीमार हैं, यौन रोग से ग्रस्त हैं, गर्भवती हैं, और पागल तो हैं ही ।"

फिर कुछ तैयारियां, कुछ हलचल, खुसुर पुसुर, बच्चों की हृदय भेदी सिसकारियां, विदाई, घर से विदाई, बच्चों से विदाई, शहर से विदाई ।

पति कहां कहां ले गए, क्या क्या किया, मैं सबसे निर्लिप्त, हवा में उड़ती रही और इसी तरह उड़ते उड़ते मेंटल अस्पताल पहुंच गई ।

अस्पताल पहुंचने के काफी दिन बाद पता चला कहां आ गई हूं, फिर

कुछ अनोखे अनुभव, कुछ यादें हैं धुंधली सी, कुछ सुखद सी एक लम्बी कहानी है वहां की भी ।

धीरे धीरे आपा मिला । मन के फफोले ठीक होते गए । त्रास, हा हा कार ठीक होता गया । मन ऐसा था जैसे तूफान के बाद का थमा हुआ सागर। अंतर में चाहे जो कुछ भरा हो, ऊपर से शांत थी किसी बात को लेकर उद्वेलित नहीं ।

लगता है इतना सब कुछ होने पर भी दुनिया, मेरे बच्चे, मेरे पति मुझे अपना लेंगे, यही अपेक्षा लेकर लौटी हूं ।

मैं हर आने वाले की नज़रें पढ़ने का प्रयास करती हूं । क्या है उन नज़रों में . . उपहास ? उपेक्षा ? क्षमा ? अपनत्व ? क्या जो कुछ चाहा था वह मिल गया मुझे ? क्या मैं आकाश के तारे तोड़ने की इच्छा से पली बढ़ी थी?

पति की नज़रें भी पढ़ती हूं । उन आंखों में दया है ? कहीं उपहास की झलक तो नहीं ? पछतावा भी तो दिखाई देता है झांकता हुआ ? कहीं उनकी आंखों में मेरे अंगारे से दहकते दर्प को तोड़ने का संतोष तो नहीं ? अहं मंडित दर्प ही ले डूबा मुझे ?

ओह मुझे तो फिर प्रश्नों ने घेर लिया है । हर अनुत्तरित प्रश्न फन फैला कर फुफकार रहा है । अब हाथ जोड़ती हूं भगवान मुझे और प्रश्न नहीं चाहिए सिर्फ़ एक साधारण औरत की ज़िन्दगी जीने का वरदान दो, औढ़रदानी।

● ● ●

अंकुरण

"आई एम जोकिंग यार।" केतकी ने सहजता से कहा और मनोज का हाथ थाम लिया। फिर बोली, "मुझे तो गांव में बड़ा आनन्द आ रहा है। लग रहा है यहाँ तो रोज़ ही पिकनिक मना रहे हैं। मैंने पहली बार गाँव देखा है न।"

"अच्छा तो आज मैं दिखाऊँगा तुम्हें गाँव। पूरा का पूरा गाँव।" मनोज ने वादा किया।

घर से पचास क़दम की दूरी पर एक चबूतरा था। बड़ा इतना कि सटा-सटा कर पचास चारपाई बिछा दी जाती थी। ऊंचाई का यह आलम कि नौ सीढ़ियाँ चढ़ो तो चबूतरे पर पहुंचो उत्तर की ओर नीम के पेड़ों की लम्बी कतार थी और दक्षिण-पूर्वी कोण पर बहुत बड़ा खारे पानी का कुआँ। किसी भी कोण से हवा बहे चबूतरे पर जरूर लगती।

शाम होते घर का कोई हलवाहा चबूतरे की सफाई कर देता, पानी छिड़क-छिड़क कर जमीन तर कर देता और चारपाइयां बिछा देता। गमियों में घर के सभी पुरुष इसी खुली जगह में सोते और स्त्रियां घर के अन्दर बड़े से आंगन में। बच्चों को कोई मनाहीं न थी कहीं भी सो सकते पर लड़कियाँ घर के आंगन में ही सोती।

जब तक चबूतरे पर, राजा रानी, राक्षसों की, सौतेली माँ के बुरे व्यवहार और दुष्ट रानी की कुटिलता की कहानी चलती रहती सभी लड़के-लड़कियाँ बैठ कर सुनते रहते।

केतकी के मामा कहानी सुनाते तो सब दम साध कर बैठे रहते केवल बड़े लोग हुंकारा भरते। कहानी चलती "छोटी रानी जब गर्भवती हुई, तो बड़ी रानी जों बांझ थी उसने एक षडयंत्र रच लिया और प्रसव के समय छोटी रानी की आँखों पर पट्टी बंधवा दी। भोली भाली छोटी रानी ने सोचा 'बच्चों को जन्म देते समय आँखों पर पट्टी बांधना जरूरी होगा।' रानी कुछ न बोली। बड़े कष्ट के बाद उसने छः बच्चों को जन्म दिया। पाँच पुत्र और एक अति सुन्दर कन्या। बड़ी रानी ने दाइयों से मिल कर छओं बच्चों को मरवा कर जंगल में गड़वा दिया। फिर छोटी रानी से बोली खोलो आँख की पट्टी। तुम क्या बच्चों को जन्म दोगी ? ये जन्मे हैं तुमने कंकड़-पत्थर। चली थी माँ बनने।" छोटी रानी चुप।

केतकी ने टी.वी. पर दादा-दादी की कहानियाँ सुनी थी और देखी थी।

पर मामा के मुँह से कहानी सुनने का आनन्द ही कुछ और था। मामा की आवाज के उतार-चढ़ाव के साथ ही केतकी के मन में उसकी कल्पना से सजाया, मन माफ़िक़ चित्र मौजूद होता। उसमें केतकी रम जाती उसकी कल्पना पंख लगा कर उड़ती और अनोखी अनुभूति विभोर कर देती।

कहानी चल रही थी "जहां बड़ी रानी ने बच्चों को मार कर गड़वाया था, वहाँ पाँच बड़े आम के पेड़ हुए और बेटी की जगह फूला बड़ा सा केतकी का फूल, जिसकी सुगंध से सारा जंगल महक उठा।"

मामा ने केतकी के फूल का बखान किया और आँखो ही आँखों में केतकी की ओर देख कर मुस्कुराए। सब बच्चे और बड़े भी मुस्कुराने लगे। केतकी पहले तो शरमा गई फिर मन ही मन फूल कर खुद ही केतकी का फूल बन गई।

कहानी आगे बढ़ी "एक सिपाही उस उपवन से गुज़र रहा था। उसने सोचा अगर यह फूल राजा को भेंट करूं तो राजा बहुत ख़ुश होंगे। इनाम भी मिलेगा पर यह क्या? जैसे ही सिपाही ने फूल तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया, फूल बोला "ए पांचो भइया अम्बा।" आम के पेड़ बोले, "कहो केतकी बहिनी" केतकी बोली "राजा के सिपाही फूल तोड़त हैं तोड़न देंय कि नाहीं।" आम के पेड़ "बहिनी आकासहि चढ़ि जाव।"

अपने ही नाम की कहानी सुन-सुन कर केतकी फूलती रही और जब तक कहानी चलती रही वह आकाश में चढ़ी रही। जब सब उठ कर घर जाने लगे तो केतकी धरती पर आई। वह धीरे-धीरे चबूतरे की सीढ़ियां उतर रही थी कि किसी लड़के ने उसके कान में कहा "कहो केतकी बहिनी।" केतकी के मन में रस घोल दिया गया था।

घर आ कर लेटी लेटी सोचती रही, यहां मामा के गाँव के अनुभव कैसे अनोखे हैं। सब लोग उसे प्यार करते हैं। इतना बड़ा चबूतरा और यह आंगन ही देखो इतना बड़ा है कि आठ फ्लैट बन जायँ। कहीं कहानी सुनो, कहीं सोने जाओ, नदी में नहाने का तो मज़ा ही और है। थोड़े दिनों में तो मैं तैरना भी सीख जाऊँगी। आज कल नदी में पानी भी कम है सब बच्चे मिल कर तैरते हैं। कच्ची अमियों से तो पेड़ लदे पड़े हैं। अपने जमशेदपुर में तो बस फ्लैट में पड़े सड़ते रहो। वही टेलीविज़न, वही गाने, वही वी. सी. आर., बोर हो जाए यार।

केतकी अपने मामा के घर शादी में आई है। जो मामा कहानी सुनाते हैं उनके भाई की लड़की की शादी है। दो बड़े-बड़े घर मेहमानों से भरे पड़े हैं। बच्चों की तो कोई गिनती ही नहीं। कोई नहीं जानता कि उनका किससे क्या नाता है। पर इतना तय है कि वे सब एक ही नातेदार के यहाँ आए हैं और सब मिल कर खेलते हैं। लड़के पेड़ों पर चढ़ जाते हैं और कच्चे पक्के आमों से लड़कियों की फ्राकों

की झोलियां भर देते हैं ।

दो लड़के लुकाट के पेड़ पर चढ़ गए और केतकी को लुकाटों से लाद दिया । इतने सारे और मीठें लुकोट उसने अपने जमशेदपुर में कभी नहीं खाए ।

रात को उसे 'कहो केतकी बहिनी' कहकर चिढ़ाने वाले लड़के ने ही उसके लिए लुकाट गिराए थे । आज दोनों में दोस्ती हो गई ।

"तुम कहां रहते हो ?" केतकी ने पूछा ।

"यहीं गाँव में । तुम्हारे मामा के घर में नहीं, दूसरे घर में हम लोग तुम्हारे मामा के पट्टीदार है न । मेरा नाम मनोज है ।'

"मैं जमशेदपुर में रहती हूँ ।"

"और केतकी हूँ" मनोज ने चिढ़ाया । फिर बोला "मुझे तो तुम्हारे बारे में सब कुछ मालूम है । तुम्हारी मम्मी को मैं बुआ कहता हूँ ।"

"मैं तो जब छोटी थी तब आई थी मुझे तो याद नहीं । तुम कैसे जानते हो ?"

"सभी तुम्हारी बातें करते हैं । तुम्हारी मामी कहती हैं चुनमुन की बिटिया केतकी, अंग्रेजी स्कूल में पढ़ती है । नामी स्कूल है । खूब अंग्रेजी बोलती है ।" और केतकी के बालों में बंधे रिबन को छू कर मनोज बोला "बालों में रिबन लगाती है ।"

"केतकी हँसी "मैं तो फ़िफ़्थ में पढ़ती हूँ और तुम ?"

"सातवीं में । गणित में सौ में सौ पाता हूँ ।" मनोज गर्व से भर उठा ।

गणित के नाम से केतकी ख़ौफ ख़ाती है । मनोज के नम्बर सुन कर मुँह टेढ़ा करके बोली "बड़बोले ।"

"नहीं ! सच । कार्ड दिखा दूंगा ।" मनोज ने सफाई दी ।

"आई एम जोकिंग यार ।" केतकी ने सहजता से कहा और मनोज का हाथ थाम लिया । फिर बोली, "मुझे तो गांव में बड़ा आनन्द आ रहा है । लग रहा है यहाँ तो रोज़ ही पिकनिक मना रहे हैं । मैंने पहली बार गाँव देखा है न ।"

"अच्छा तो आज मैं दिखाऊँगा तुम्हें गाँव । पूरा का पूरा गाँव ।" मनोज ने वादा किया ।

केतकी ने खेत देखे, खेतों की मेड़ पर मनोज का हाथ पकड़ कर चलती रही । खेतों में सब्जियाँ लगी थी । कहीं रहट चल रहा था । रहट देख कर केतकी को बड़ा अनोखा लगा । चूं चरर मरर । ऐसा भला कहाँ देखने को मिलता । केतकी हंसती रही, मनोज को सारा श्रम बड़ा सार्थक लगा ।

अब केतकी के नाना का बाग़ देखने की बारी आई । केतकी ने पार्क देखे

थे। सजे संवरे, फूलों से भरी क्यारियाँ और घास के सुन्दर क़ालीन। पर गांव के बाग़ ऐसे नहीं होते। वहाँ होते हैं पेड़ और सिर्फ पेड़। केतकी के नाना के बाग़ में तो इतने बड़े-बड़े और घने पेड़ थे कि उन्होंने सूरज की गर्मी को सोख लिया था। धूप कहीं कहीं पत्तियों से छन-छन कर आ रही थी। सारे बाग़ के ऊपर जैसे हरियाली का चंदोवा ताना हो।

आम के पेड़ों की तो छटा ही निराली थी। पुराने पेड़ों की डालियाँ तो इतनी नीची हो कर फैल रही थीं कि जैसे धरती को छूने की होड़ में केतकी के स्वर में स्वर मिला कर इतरा रही हों। मनोज और केतकी एक डाली पर बैठ गए। केतकी की मुट्ठी कच्चे पक्के फ़ालसों से भरी थी। दोनों डाल पर बैठ कर पैर हिला रहे थे। कहीं पास ही कोयल कूकी। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और अनायास ही हंस पड़े। प्रकृति के वैभव पर दोनों विभोर थे।

केतकी अपने नाना के वैभव पर गर्व से भर उठी। सोचा हम लोग तो नाना मामा के मुकाबले में कुछ भी नहीं। बोली "कैसे लगा लिया इतना बड़ा बाग़ नाना ने। मैं तो बहुत से पेड़ों के पत्ते भी नहीं पहचानती। बस हैरान हूँ सब कुछ देखकर।"

"नाना ने नहीं, तुम्हारे परनाना ने" मनोज बोला "जब वे रिटायर होकर शहर से यहाँ रहने आए थे तो ख़ुद अपने हाथों बाग़ लगाया था। दिन-रात लगे रहते। पेड़ों को बच्चों की तरह प्यार करते थे। कहते थे कि "पेड़ तो अपनी संतान हैं। किसी नौकर चाकर पर भरोसा नहीं करना चाहिए।"

यह अपना बड़े फाटक वाला मकान भी उन्होंने बनवाया था। बहुत सी गाएँ पालीं, बैल खरीदे और भी बहुत कुछ किया। सब कुछ उसी ज़माने का है।"

"कितनी गाएं पाली होंगी? क्या आर्यों की तरह पशुपालन किया था?"

"यह तो नहीं मालूम पर चालीस गाएं और बीस बैल आज भी हैं।" "अरे बाप रे!" केतकी आश्चर्य चकित थी फिर वे दोनों दौड़ पड़े उस लम्बी सार को देखने जहां चालीस गाएं बांधी जाती थीं। गाएं चरने गई थीं। पूरी सार खाली पड़ी थी।

केतकी ने पूछा "यह सार के बगल में किसका घर है?"

मनोज हँसा "किसी का भी नहीं। इस पूरे घर के कमरों में तो भूसा भरा रहता है, गाय बैलों के खाने के लिए।"

मनोज ने भूसे से भरा एक कमरा खोला। कमरे का आधा भूसा ख़र्च हो गया था और एक तरफ काफी ऊँचा भूसे का ढेर लगा था। पूरे कमरे में भूसे का गद्दा बिछा था। मनोज भूसे में पैर रखता धंसता, फिर उबरता भूसे के ढेर पर चढ़ गया। फिर नीचे भूसे के गद्दे पर कूदा। 'धम्म'

केतकी भी चढ़ी गिरने लगी तो मनोज ने हाथ पकड़ कर ऊपर खींचा।

फिर केतकी कूदी 'धम्म' । एक बार मनोज कूदता तो दूसरी बार केतकी । सारे कमरे में धूल ही धूल भर गई । भूसे में मिली गर्द और भूसे के छोटे-छोटे कण उड़ने लगे । केतकी पसीने-पसीने हो गई । खांसते-खांसते बुरा हाल हो गया ।

मनोज जैसे एकदम से होश में आया । हाथ पकड़ कर केतकी को बाहर खींचा "चलो बाहर चलते हैं । बहुत देर हो गई । कोई देख लेगा तो कहेगा हम लोग भूसे की कोठरी में बुरी बात कर रहे थे ।" मनोज के स्वर में घबड़ाहट थी ।

केतकी हँसी "बुरी बात तो है ही । देखो मेरी सारी फ्राक गन्दी हो गई । खांसी आई वह अलग ।"

मनोज ने केतकी की आँखों में आँखें डाल कर अपनी दोनों हथेलियों में उसके गालों को समेटा और बोला "कितनी भोली हो तुम केतकी ? कुछ भी नहीं जानतीं ।" मनोज ने केतकी की आँखों में एक नशा देखा था जिसके तहत वह दिन भर गाँव में घूमती फिरी थी ।

इस समय मनोज की नज़र में भी वही नशा था । एक मानसिक संवाद ? मर्यादा युक्त जीवन की समग्रता ? एक आत्म विस्मरण, जो सारी कुंठाओं से मुक्त था ? मनोज की दृष्टि में एक ऐसे निश्छल नेह की सुगन्ध थी, जिससे केतकी का रोम-रोम सुवासित हो गया था । वह जो कुछ नहीं जानती थी वह सब कुछ जानने की ओर बढ़ गई । बालिका ने एक क़दम आगे बढ़ा दिया था किशोरी बनने की ओर ।

ऐसा नहीं कि केतकी कुछ भी नहीं जानती । वह जानती है, फूलों में परागण कैसे होता है । उसे यह भी मालूम है की जीव मात्र में सृष्टि के संचालन के लिए एक नर और मादा की ज़रूरत होती है ।

पर मनोज की दृष्टि ने उसे समझा दिया था कि इस सृष्टि संचालन में उसकी भी भागीदारी है ।

केतकी और सृष्टि रचना की प्रक्रिया के बीच जो झीना आवरण था वह एक झटके से टूट गया था । केतकी के मन में नेह का अंकुर फूट चुका था । अनन्त की लय में लय का मिलन बाक़ी था । दोनों ही अहं भाव का समपर्ण करने को आकुल थे । जीवन की मूल प्रेरक शक्ति अमूर्त को मूर्त रूप देने को व्याकुल थी । दोनों खो गए थे । उन्हें परिपूर्ण श्रृंगार पुकार रहा था । कैसा अनूठा अनुभव, कि कहीं से आवाज़ आई "अरे मनोज केतकी ! कहाँ थे तुम लोग अब तक ।"

●●●

स्वप्नों का भार

रात भर मालती को यह पता न चला कि वह कब जाग रही है और कब सो रही है। एक ही तरह के विचार और स्वप्न उसके ऊपर छाये जा रहे थे। जिनका न आदि था, न अन्त, न एक कड़ी थी और न बिखरे हुए थे। मालती को याद नहीं कि, कभी और भी उसकी ऐसी दशा हुई हो।

वह एक बहाव था, जिसमें मालती बही जा रही थी और नदी की कल-कल उसे बड़ी प्यारी लग रही थी।

पहले की बात और थी पर अब तो मालती का जीवन एक शान्त झील के समान हो गया था। वह झील जो कोलाहल से दूर किसी पहाड़ी के आँचल में अपनी परिधि में मंद-मंद गति से हिलोरें लेती रहती। मालती के मन की अतल गहराइयों में कौन-कौन से सुख-स्वप्न सो रहे हैं; वह स्वयं न जानती।

पति दफ़्तर और बच्चे स्कूल चले जाते। मालती को कुछ काम न रहता, पड़ी-पड़ी सोचा करती थी। उसके पास सोचने को कुछ अधिक न था– वही चार दिन, वही बातें, जो उसके शान्त जीवन में हलचल मचा कर समाप्त हो गयीं। मालती समझ न पाती कि अपने उस पाप को स्वीकार करके पश्चात्ताप कर ले अथवा उस थाती को किसी गहन विश्वास के सहारे सम्भाले रहे। उसका चित्त चंचल हो उठता, उसे अपने विश्वास की आधारहीनता का बोध होता, मन अशान्ति से भर उठता, समय पीछे लौट जाता और स्मृतियाँ साकार हो उठतीं।

प्रभात को आये, वह तीसरा दिन था, रमेश अपने इस नये मेहमान के आने से बहुत परेशान था। वह जानता था कि घर में कुछ प्रबन्ध नहीं और मालती ने परसों ही रुपयों का इन्तज़ाम करने को कहा था। उसे मालती के सामने जाने का साहस ही न हो रहा था। महीने का आख़ीर था। वह भी आख़िर क्या करे? वह मन-ही-मन झल्ला रहा था। यह भी कोई होटल है, मुँह उठाया और चल दिये। आख़िर किसी और का भी तो ध्यान होना चाहिए। दबे पैरों अपराधी की भाँति वह रसोई-घर की ओर चला। वह मालती को बताना चाहता था कि पैसे का कुछ भी प्रबन्ध नहीं हो सका? पर मालती की तन्मयता देख कर कुछ कहने की इच्छा न हुई। आज वर्षों बाद वह खाना बनाते समय गुनगुना रही थी। रमेश ठिठक गया। उसे लगा कि मालती के चेहरे की अगणित रेखाएँ मिटती जा रही हैं। धीरे-धीरे सारी रेखाएँ गायब हो गयीं और एक स्वस्थ सलोना चेहरा हँसते हुए कह रहा था– "मैं पकौड़ी सेंकती हूँ तुम, चाय पीलो।" रमेश पूछने वाला था कि यह सब कैसे किया पर प्रभात की आवाज़ सुन कर चुप हो गया।

"हम तुम्हारे बग़ैर चाय नहीं पीयेंगे भाभी। यह भी कोई बात हुई। आप तो चूल्हे के पास बैठी हैं और हम चाय पियें। मैं तो तुम्हें हेल्प करने आया था और यहाँ तो सब तैयार है।"

"यह क्या? तुम तो ऐसे आ जाते हो, जैसे प्रसाद के नाटकों में दो के बीच में तीसरा पात्र टपक पड़ता है।"

"तुम तो बड़ी साहित्यिक हो, भाभी !"

"साहित्यिक नहीं पत्थर। हाँ, अपने कॉलेज के दिनों में ज़रूर ड्रामे वगैरह में बड़ी दिलचस्पी लेती थी। पर अब तो...।"

"अब तो क्या? अब बूढ़ी हुई", प्रभात ने हँसते हुए कहा, मालती बोली "और नहीं तो क्या? दो बच्चों की माँ हूँ। पक्की गृहस्थिन। बूढ़ी ही समझो।"

"अरे, यह न कहो भाभी," प्रभात जोर से चिल्लाया– "ऐसी बनी हुई बुढ़िया तो बहुत से लोगों की कमज़ोरी होती है।"

मालती को लगा, प्रभात ने उसके मर्म स्थल को छू लिया है। वह काँप उठी। इतनी घनिष्ठता! दूसरे ही क्षण वह स्वस्थ हो गयी।

"यह दूध ठंडा डाल दिया? अरे, अरे लकड़ियाँ क्यों बुझाते हो, खाना नहीं बनेगा क्या?"

"बस अब तुम चुप रहो। रमेश भैया से कविताएँ सुनेंगे। खाना बनेगा बाद में।"

प्रभात क्या आ गया, घर की दुनिया ही बदल गयी मालती के रोम-रोम से प्रसन्नता फूटी पड़ती। सारा घर साँसों की गर्मी से गरम हो उठा था। ऐसी गर्मी जिसमें जीवन पलता है। मालती का मन कोमलता से परिपूर्ण था और प्रभात के कहकहे उस कोमलता में बार-बार सिहरन पैदा कर रहे थे।

रमेश ने कविता सुनायी। मालती ने पहले भी कई बार सुनी थीं, पर आज बड़ी सरस लगीं। उलाहने के स्वर में प्रभात से बोली– "आज वर्षों बाद इनकी कविता सुनी। लिखना क्या सुनाना भी छोड़ दिया और मेरे कहने से तो कभी नहीं सुनाते।"

प्रभात ने कई कविताएँ सुनायीं। पर मालती तो प्रभात की कविता की कुछ पंक्तियों में ही डूबती उतराती रही। भाव था :

'तेजमयी, यद्यपि मैंने तुम्हें पहली बार देखा है पर जान पड़ता है तुम जीवन-भर मेरे साथ चलती आयी हो और तुम्हारे सम्बल ने ही मुझे आगे बढ़ाया है। कल्याणी, आज तो तुमने इतना सुन्दर विराम स्थल बना दिया है कि मुझे विश्वास है कि यह मेरी यात्रा का सबसे सुखद और अंतिम विश्राम है। इसके बाद में मैं चलता ही रहूँगा, चलता ही रहूँगा, अनन्त काल तक।' कविता सुनकर प्रभात ने तारीफ के लिए मालती

की ओर देखा।

नारी जीवन की सार्थकता पर मालती का मन गर्व से फूल उठा। वह भी तो नारी ही थी, फिर... ।

रात भर मालती को यह पता न चला कि वह कब जाग रही है और कब सो रही है। एक ही तरह के विचार और स्वप्न उसके ऊपर छाये जा रहे थे। जिनका न आदि था, न अन्त, न एक कड़ी थी और न बिखरे हुए थे। मालती को याद नहीं कि, कभी और भी उसकी ऐसी दशा हुई हो।

वह एक बहाव था, जिसमें मालती बही जा रही थी और नदी की कल-कल उसे बड़ी प्यारी लग रही थी।

सवेरा हो गया था। प्रभात अखबार पढ़ रहा था। मालती रमेश की मेज़ सजाने लगी। प्रभात की ओर उसकी पीठ थी, पर उसे लगा कि प्रभात की तीखी नजरें उसकी पीठ को भेद कर उसके हृदय में घुसी जा रही हों। वह हलके-हलके क़दम उठतीं, बाहर आ गयी।

मालती ने घर की सफाई की। नहा-धो कर चाय बनायी। और अब आँगन में बैठ कर दाल धो रही थी। प्रभात ग़ुसलखाने में नहा रहा था। नल बन्द था और अब वह शायद कपड़े पहन रहा था। मालती से दाल जमीन पर गिर गयी। वह धीरे-धीरे उठाने लगी। न जाने कैसी व्याकुलता छाई थी कि उसके हाथ पैर ही न चलते थे। मालती अपने को रोकती ही रही, पर होंठ खुल गये। स्नेहसिक्त हृदय से गाना फूट पड़ा। मालती गा रही थी—

'घर आये मेहमान बने, अब निष्ठुर प्राण बने जाते हो।'

अपने स्वर की मधुरता में वह स्वयं खो गयी।

"तुम तो बड़ा सुन्दर गाती हो, भाभी। पर कल मेरे कहने से नहीं सुनाया," प्रभात की आवाज से मालती चौंकी और उसने अपने होंठ काट लिये। उन्होंने क्या सोचा होगा....!

शाम को प्रभात चला गया। मालती को बड़ा मोह लग रहा था, पर प्रभात जल्दी में था। चलते समय प्रभात ने बच्चों को प्यार किया। मालती से कष्ट के लिए क्षमा माँगी और अपना कविता संग्रह भेंट किया। मालती ने साहस बटोर कर कहा—"चिट्ठी डालना!"

"ज़रूर! ज़रूर!!' रिक्शा आगे बढ़ गया और ये शब्द मालती के कानों में दुहराते रहे।

दिन, सप्ताह और महीने बीतते गये साथ ही मालती के कानों में "ज़रूर-ज़रूर!" की ध्वनि कम होती गयी। जिन्दगी फिर पहले की तरह चलने लगी। बँधा

हुआ काम। रटी हुई बातचीत। आज वह अपने में किसी को बल देने का साहस न पाती। अब उसे अपने जीवन की या नारी जीवन की सार्थकता पर विश्वास न रहा था। उसका मन ग्लानि से भर उठता। एक भारी बोझ उसके हृदय को दबाये रहता पर वह उसे हटा न पाती। पता नहीं मैं इतनी हलकी क्यों हो उठी थी।

एक दिन रमेश ने पूछा– "अभी-अभी चौधराइन क्या कह रही थी ?"

मालती थोड़ा हिचकिचाई, फिर बोली– "कह रही थीं, वे जो तुम्हारे मेहमान आये थे, तब तुमने जो पायल गिरवी रक्खी थी, उसे उठा लो नहीं तो डूब जायेगी। चार महीने हो गये।"

रमेश ने सोचा, वह कुछ न बोले। फिर मालती का चेहरा देख कर कहा– "देखो, देखूँगा।"

रात में मालती को बहुत देर तक नींद नहीं आयी। तरह–तरह के संकल्प-विकल्प मन में उठते रहे। कभी प्रभात का ध्यान आ जाता। एक भी ख़त नहीं डाला। और मुझे क्या हो गया था, जो उस दिन वह गीत गा बैठी। उसने निश्चय किया कि वह अपने झूठे मोह को तोड़ देगी। आज अपने मन का पाप अपने पति से कह कर उस बोझ से छुटकारा पालेगी, जो हर समय उसके हृदय को दबाये रहता है। इस निश्चय से उसका जी हलका हुआ; वह पति के पास आकर लेट गयी। इधर–उधर की बात करने के बाद होंठ काटती हुई बोली– "मुझे तुमसे एक बात कहना है, नाराज़ मत होना।"

रमेश ने शंकित स्वर में पूछा, "क्या ?" उसने किसी गहरी आर्थिक हानि की कल्पना कर ली थी।

मालती ने मुँह खोला, किन्तु उसके महीनों से सजाये हुए कोमल स्वप्न उसके अंतरतम से कस कर चिपटे थे, जैसे जिद्दी बालक ने माँ का आँचल कस कर पकड़ रखा हो। वह जोर लगा कर भी, अपना आँचल छुड़ाने-में समर्थ न हुई।

रमेश फिर बोला, "कहती क्यों नहीं ? क्या बात है ?"

"मैंने अपनी पायल गिरवी रख दी थी.... ।"

"यह तो तुम मुझे बता चुकी हो," रमेश के स्वर में ऊबने का भाव था।

"अच्छा, मुझे याद नहीं रहा था। तो फिर उसके छुड़ाने का इन्तज़ाम... ।"

"तुम पागल हो। मुझे नींद आ रही है... सोता हूँ, पायल छुड़ाने का इन्तज़ाम हो ही जायेगा," रमेश ने झल्ला कर करवट बदली और कुछ देर में सो गया।

मालती सोच रही थी... इन कोमल स्वप्नों की कहीं और जगह नहीं ये मेरे हैं। केवल मेरे। निजी जिसमें रमेश का, उसके पति का कोई दखल नहीं। वह इनका भार खुशी से ढोयेगी। अपनी निजी वस्तु कोई फेंक देता है ? ●●●



लेखिका